दिव्य जीवन सन्दर्शन

SERVE LOVE MEDITATE REALIZE

THE DIVINE LIFE SOCIETY

अमृतमहोत्सव प्रकाशन

दिव्य जीवन सन्दर्शन

दिव्य जीवन सन्दर्शन

SERVE LOVE MEDITATE REALIZE

THE DIVINE LIFE SOCIETY

अमृतमहोत्सव प्रकाशन

१३ जनवरी १९३६ को संस्थापित द डिवाइन लाइफ सोसायटी के अमृत महोत्सव के शुभ अवसर पर प्रकाशित

२०११

(१००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर
के लिए स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा
योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पत्रालय :
शिवानन्दनगर-२४९१९२, जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड
में मुद्रित।



प्रकाशकीय

यह पुस्तक हमें १३ जनवरी १९३६ के उस समय में ले जाती है, जब गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने अम्बाला में 'द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट' की संस्थापना की थी। उनके हृदय में कब और कैसे इसके बीज अंकुरित हुए, कैसे उन्होंने अपने मानस-पटल पर दिव्य जीवन का सन्दर्शन किया और किस प्रकार इसकी अभिव्यक्ति हुई, यह सब इसमें हम स्वयं उन्हीं के शब्दों में पढ़ सकते हैं। इसके उपरान्त उनके प्रथम तथा अत्यन्त ओजस्वी शिष्य श्री स्वामी परमानन्द जी सविस्तार वर्णन करते हैं कि संस्था ने किस प्रकार कार्य करना प्रारम्भ किया और कैसे विकसित होती गयी। इसके साथ ही गुरुदेव के अन्य महान् शिष्यों, श्री स्वामी चिदानन्द जी, श्री स्वामी कृष्णानन्द जी, श्री स्वामी वेंकटेशानन्द जी, डा. कुट्टी माता जी ने तथा कतिपय अन्य एकनिष्ठ भक्तों ने भी इसके सम्बन्ध में वर्णन किया है।

'स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षाओं का सार' शीर्षक के अन्तर्गत हमें उनके 'बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक नियम', 'साधना-तत्त्व', 'अठारह सद्गुणों का गीत' तथा 'विश्व-प्रार्थना'; सभी की प्राप्ति होती है।

अन्त में द डिवाइन लाइफ सोसायटी का १३-१-१९३६ से १३-१-२०११ तक का विस्तृत ऐतिहासिक वर्णन संक्षिप्त रूप में दिया गया है।

गत शताब्दी में भारतवर्ष और समस्त विश्व-भर में होने वाली अनेकों संघर्षपूर्ण एवं रोमांचकारी घटनाओं के मध्य उभरने वाली बहुत सी अभूतपूर्व आध्यात्मिक संस्थाओं में 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी' का एक विशेष स्थान है। जब हम पीछे पलट कर देखते हैं और यह पाते हैं कि परमात्मा किस प्रकार अपनी सृष्टि में पूर्ण सन्तुलन बनाये रखता है, तो हम आश्चर्य चकित रह जाते हैं। इसी सन्दर्भ में, हम विशेष रूप से गुरुदेव के प्रति, उनकी महान् शिक्षाओं के प्रति तथा उनके द्वारा इस विश्वव्यापी संस्था की स्थापना किये जाने के महान् कार्य के प्रति गहन श्रद्धा से अवनत हो जाते हैं।

—द डिवाइन लाइफ सोसायटी

विषय-सूची



1

डिवाइन लाइफ मूवमेंट

(दिव्य जीवन धारा)

परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

नवीन दृष्टिकोण का उदय

"क्या जीवन में नित्य कार्यालय जाने तथा खाने-पीने के अतिरिक्त अन्य कोई उच्चतर लक्ष्य नहीं है? क्या इन परिवर्तनशील तथा भ्रामक सुखों से बढ़ कर नित्य-सुख का कोई उच्चतर रूप नहीं है? कितना अनिश्चित है यह सांसारिक जीवन? अनेक रोगों, शोकों तथा दुःखों से, निराशाओं तथा भयों से भरा हुआ यह जीवन कितना सशंकित है? यह नाम-रूपों का जगत् सदा परिवर्तनशील है। समय भागा जा रहा है। इस जगत् में सुख की सारी आशाएँ दुःख, निराशा तथा शोक में ही परिसमाप्त होती हैं।"

ऐसे ही विचार सदा मेरे मन में उठा करते थे। डाक्टरी व्यवसाय के द्वारा मुझे इस जगत् के दुःखों का प्रचुर प्रमाण मिला। सहानुभूतिपूर्ण हृदय

वाले वीतरागी के लिए यह जगत् सर्वथा दुःखमय है। केवल धन-संचय से मनुष्य सच्चा तथा शाश्वत सुख नहीं पा सकता। निष्काम कर्म के द्वारा हृदय की शुद्धि के अनन्तर मुझमें नयी दृष्टि का उदय हुआ। मुझे यह पक्का विश्वास हो चला कि वैसा धाम—ईश्वरीय वैभव, शुद्धता तथा दिव्य महिमा का पवित्र धाम—अवश्य होगा जहाँ मनुष्य परम सुख, सुरक्षा, पूर्ण शान्ति तथा चिरन्तन सुख को आत्म-साक्षात्कार के द्वारा प्राप्त कर सके।

परिव्राजक के रूप में

मैंने सुख, आराम तथा विलास के जीवन का परित्याग किया तथा प्रार्थना, ध्यान, स्वाध्याय तथा समस्त जगत् की उच्चतर सेवा के लिए एक आदर्श केन्द्र की खोज में भारतवर्ष आ पहुँचा। १९२३ में मैंने अर्थोपार्जन तथा विलासमय जीवन का परित्याग कर परिव्राजक-जीवन को ग्रहण कर लिया—सत्य का सच्चा अन्वेषक बन गया। सिंगापुर से मैं वाराणसी पहुँचा। वहाँ मैंने भगवान् शिव के दर्शन किये। तत्पश्चात् मैं नासिक, पूना तथा अन्य प्रसिद्ध धर्म-स्थलों के लिए चल दिया। पूना से मैं ७० मील पैदल चल कर पण्ढरपुर पहुँचा। मार्ग में खेदगाँव के योगी स्वामी नारायण जी के आश्रम में कुछ दिनों तक ठहर गया। तब मैं चार महीने तक धालज में चन्द्रभागा के तट पर ठहरा रहा। अपनी निरन्तर यात्रा से मैं सीख गया कि किस प्रकार विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ निर्वाह करना चाहिए।

मैंने योगियों, महात्माओं तथा महापुरुषों के जीवन से बहुत शिक्षा प्राप्त की। मुझमें निहित सेवा-भाव ने मुझे सर्वत्र शान्तिमय जीवन-यापन में समर्थ बनाया। परिव्राजक-रूप में यात्रा करने से मुझे तितिक्षा, समदृष्टि, सुख-दुःख में मन का समत्व आदि गुणों के अर्जन में सहायता मिली। मैं बहुत से महात्माओं को मिला तथा महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ प्राप्त कीं। कई दिनों तक मुझे बिना भोजन के ही रहना पड़ता और मीलों तक पैदल भ्रमण करना पड़ता था। मुस्कान के साथ मैंने सारी बाधाओं का सामना किया।

गुरु की आवश्यकता

आध्यात्मिक मार्ग अनेक बाधाओं से आक्रान्त है। गुरु ही कुशलतापूर्वक साधकों का पथ-प्रदर्शन करता है तथा सारी कठिनाइयों को दूर करता है। वह साधकों में प्रेरणा भरता है तथा अपने आशीर्वाद के द्वारा उनमें

आध्यात्मिक शक्ति का संचार करता है। गुरु, ईश्वर, तीर्थ तथा मन्त्र एक ही हैं। अपरिपक्व मन वाले रागात्मक प्रकृति के सांसारिक लोगों के वासनापरक संस्कारों पर विजय पाने के लिए गुरु से व्यक्तिगत सम्पर्क एवं सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

मैं गुरु की खोज में ऋषिकेश पहुँचा तथा ईश्वर से उसकी कृपा के लिए प्रार्थना की। बहुत से अभिमानी साधक कहते हैं—“मुझे गुरु की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर ही मेरा गुरु है।” वे स्वयं ही वस्त्र रंग कर स्वतन्त्र रूप से रहते हैं। वे बाधाएँ तथा कठिनाइयाँ सामने आने पर घबरा जाते हैं। मैं धर्मग्रन्थों तथा ऋषियों के नियमों एवं अनुशासनों की अवहेलना पसन्द नहीं करता। जब हृदय में परिवर्तन हो, तो बाह्य रूप में भी परिवर्तन होना ही चाहिए। दुर्बल एवं डरपोक जन संन्यासी की महिमा तथा स्वतन्त्रता की कल्पना भी नहीं कर पाते हैं। १ जून १९२४ को परमहंस श्री स्वामी विश्वानन्द सरस्वती के पवित्र हाथों से गंगा के किनारे मैंने संन्यास-दीक्षा ग्रहण की। मेरे आचार्य गुरु श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द जी ने कैलास-आश्रम में मेरा विरजा-होम-संस्कार कराया।

प्रारम्भ में वैयक्तिक गुरु की आवश्यकता है। ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग वही दिखला सकता है जो गुरुओं का गुरु है। वही आपके मार्ग की बाधाओं तथा प्रलोभनों को दूर करेगा। आत्म-साक्षात्कार एक लोकातीत अनुभव है। आप आत्मज्ञान-प्राप्त साधु-महात्माओं के आप्त वाक्यों में अटूट श्रद्धा तथा विश्वास रख कर ही आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति कर सकते हैं।

शिष्य के लिए गुरु की कृपा आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं है कि शिष्य आलसी बन कर इस आशा में बैठ जाये कि गुरु अपने-आप ही उसको समाधि में पहुँचा देगा। गुरु स्वयं साधक के लिए साधना नहीं कर सकता। गुरु के कमण्डलु के जल की बूँद से आध्यात्मिक प्राप्ति की आशा तो मूर्खता ही है। गुरु साधक का पथ-प्रदर्शन कर सकता है, शंकाओं का निवारण कर सकता है, मार्ग प्रशस्त कर सकता है, बाधाओं एवं प्रलोभनों को दूर भगा कर उसके पथ को प्रकाशित कर सकता है; परन्तु अपने मार्ग पर कदम रख कर स्वयं साधक को ही चलना होता है।

आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरु तथा शास्त्रों के उपदेशों में अटूट एवं

निश्चल श्रद्धा, तीव्र तथा दृढ़ वैराग्य, मुमुक्षुत्व, दृढ़ संकल्प, लौह निश्चय, अदम्य धैर्य, अविचल संलग्नता, घड़ी के समान नियमितता तथा शिशुवत् सरलता की आवश्यकता है।

यदि आपका कोई गुरु नहीं है तो आप भगवान् कृष्ण, शिव या भगवान् राम अथवा ईसामसीह को अपना गुरु मान लें। उनकी प्रार्थना करें, उनका ध्यान करें तथा उनके नाम का कीर्तन करें। वे आपके अनुकूल गुरु भेज देंगे।

यात्रा की समाप्ति

मैं जून १९२४ को ऋषिकेश पहुँचा तथा उसको अपना चिर-अभिलषित स्थान पाया। मेरे गुरु ने दीक्षा के साथ प्रचुर आशीर्वाद तथा आध्यात्मिक बल प्रदान किया। गुरु केवल इतना ही कर सकते हैं। तीव्र एवं कठोर साधना तो साधक को ही करनी पड़ती है। देहरादून जिले में ऋषिकेश रेलवे स्टेशन है। यह बहुत से साधुओं का पवित्र निवास-स्थान है। यहाँ सारे साधुओं, योगियों तथा साधकों को निःशुल्क भोजन मिलता है। इसके लिए यहाँ पर एक क्षेत्र है। वे कहीं भी किसी धर्मशाला, झोपड़ी, कुटिया अथवा स्व-निर्मित कुटी में निवास कर सकते हैं। ऋषिकेश के निकट बहुत से मनोरम स्थान है जैसे ब्रह्मपुरी, नीलकण्ठ, वसिष्ठ-गुहा, तपोवन आदि। ऐसे स्थानों में रहने वाले साधु 15 दिन में एक बार सूखा अन्न प्राप्त करते हैं, जिससे वे अपना भोजन स्वयं ही तैयार कर लेते हैं।

हिमालय का दृश्य मनोहर तथा प्रेरणात्मक है। पवित्र गंगा तो वरदान-रूप ही है। गंगा के किनारे चट्टान अथवा टीले पर बैठ कर मनुष्य घण्टों तक ध्यान कर सकता है। कुछ पुस्तकालय भी हैं जहाँ से हम संस्कृत, अँगरेजी तथा हिन्दी की योग-दर्शन-सम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं। कुछ विद्वान् महात्मा नियमित दैनिक कक्षाएँ चलाते हैं तथा योग्य साधकों को वैयक्तिक रूप से पढ़ाते हैं। इस स्थान की जलवायु अच्छी है—जाड़े में (नवम्बर से मार्च तक) कुछ अधिक जाड़ा तथा गरमी में (अप्रैल से जून तक) कुछ अधिक गरमी रहती है। रोगियों की सेवा-शुश्रूषा के लिए एलोपैथिक तथा आयुर्वेदिक अस्पताल भी हैं। इस प्रकार मैं ऋषिकेश को उग्र एवं अबाध आध्यात्मिक साधना हेतु सभी सत्यान्वेषी साधकों के लिए



उपयुक्त स्थान समझता हूँ।

मेरी समन्वय-साधना की विधि

रोगियों, निर्धनों तथा महात्माओं की सेवा करने से हृदय शुद्ध होता है। सारे दैवी गुणों—जैसे करुणा, दया, सहानुभूति, उदारता आदि के विकास के लिए यह सुन्दर क्षेत्र है। इससे अहंकार, स्वार्थ, घृणा, लोभ, काम, क्रोध, द्वेष इत्यादि दुर्गुणों एवं विकारों को नष्ट करने में सहायता मिलती है। महात्माओं तथा निर्धन ग्रामीणों को उचित उपचार की सुविधा प्राप्त नहीं थी। बदरीनाथ तथा केदारनाथ जाने वाले सहस्रों यात्रियों को औषधि की आवश्यकता भी होती थी; अतः मैंने 'सत्य सेवाश्रम' नामक एक छोटा-सा औषधालय चलाया जो लक्ष्मणझूला में बदरी-केदार के पैदल रास्ते में पड़ता था। मैं बड़े प्रेम तथा श्रद्धा के साथ महात्माओं की सेवा किया करता था। मैंने गम्भीर रोगियों के लिए दूध तथा अन्य विशेष आहार का भी प्रबन्ध किया था। समुचित निष्काम सेवा-भाव से आध्यात्मिक उन्नति शीघ्र ही हो जाती है।

उच्च स्तरीय स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए मैंने आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा बन्ध के अभ्यास किये। मैं सायंकाल बहुत दूर तक टहलता हुआ चला जाता था। दण्ड, बैठक आदि कुछ शारीरिक व्यायाम भी कर लिया

करता था। मैं सरल जीवन, उच्च विचार, अल्पाहार, गम्भीर अध्ययन, मौन, ध्यान तथा नियमित प्रार्थना पर विशेष ध्यान देता था। मैं एकान्त-प्रेमी था तथा मौन-व्रत किया करता था। मैं किसी का संग तथा व्यर्थ की गपशप करना पसन्द नहीं करता था। मुनिकीरेती में रामाश्रम-पुस्तकालय से मैं कुछ पुस्तकें अध्ययन के लिए ले कर नित्य-प्रति उनके अध्ययन में कुछ समय लगाता था। मैं अपने पास शब्दकोष रखता तथा कठिन शब्दों का अर्थ उसमें देख लिया करता था। आराम तथा शिथिलन के द्वारा भी मुझे उग्र साधना हेतु पर्याप्त बल मिलता था। मैं कुछ महात्माओं के निकट-सम्पर्क में था; परन्तु कभी भी विवाद अथवा बहस में नहीं पड़ता था। आत्म-विश्लेषण तथा अन्तर्निरीक्षण ही मेरे पथ-प्रदर्शक थे।

प्रार्थना तथा ध्यान में अधिक समय लगाने के विचार से मैं स्वर्गाश्रम में चला आया। मैं एक छोटे-से कुटीर में रहने लगा जो आठ फुट चौड़ा, दश फुट लम्बा था तथा सामने एक छोटा-सा बरामदा था। मैं काली कमली वाले क्षेत्र में भोजन करता था। आजकल उस कुटीर की क्रम-संख्या १११ है तथा उसके साथ कुछ और कमरे भी बन गये हैं। मैंने अपनी साधना तथा उस स्थान के रोगियों की सेवा जारी रखी। मैं प्रतिदिन एक घण्टे के लिए प्रत्येक कुटीर में रोगी महात्माओं की सेवा के लिए जाता तथा उनका हाल पूछ कर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। मैं अपना अधिक समय ध्यान तथा विभिन्न प्रकार के योगों की साधना में लगाता था। मेरे अनुभव मेरी कई पुस्तकों में साधकों के सहायतार्थ प्रकाशित हो चुके हैं। मैं अपने विचारों तथा अनुभवों को जगत्-हित में एवं सत्य की खोज में प्रयत्नशील साधकों के लाभ के लिए शीघ्र ही प्रकाशित करा दिया करता था। साधारणतः बड़े महात्मा भी अपने दुर्लभ ज्ञान को गुप्त ही रखते थे और केवल कुछ चुने हुए व्यक्तियों पर ही प्रकट करते थे।

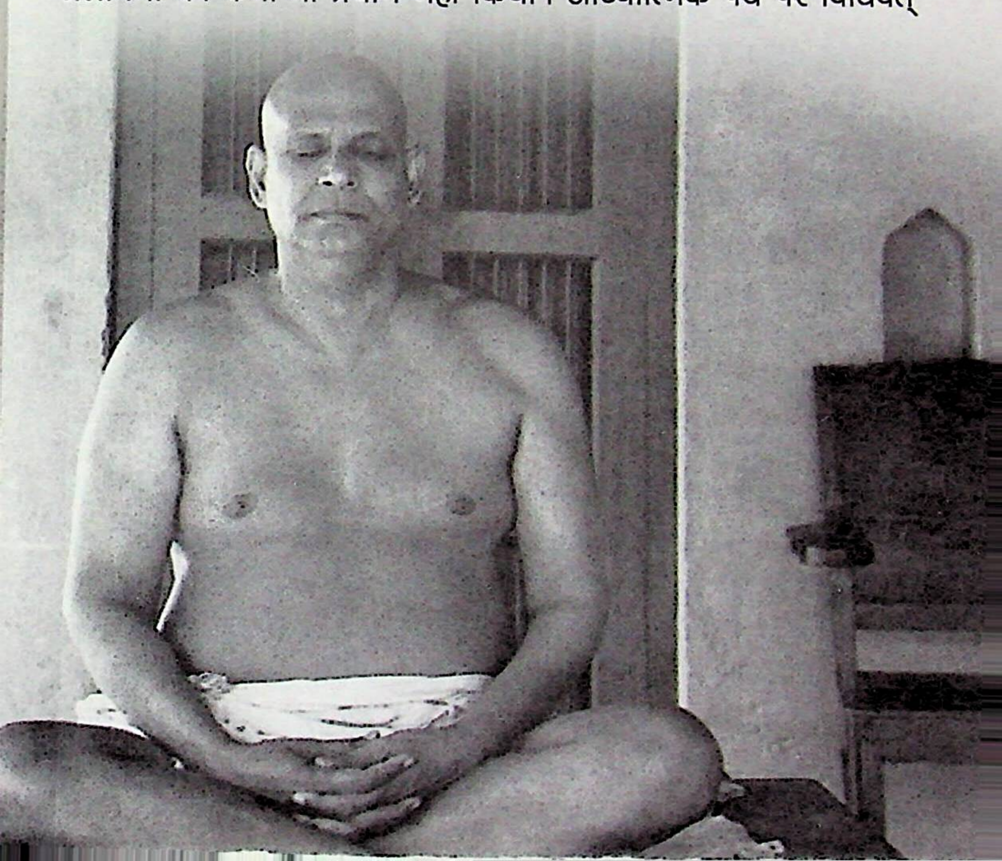
मेरा अनुकरणीय उदाहरण

एकान्त में साधना करना मुझे सदा ही प्रिय रहा। दिन में थोड़े से समय के लिए मैं लेख लिखा करता और पिपासु जिज्ञासुओं को पत्र लिखता। मैं न तो कभी लालटेन जलाता और न ही कभी रात के समय काम करता। प्रातः केवल घण्टे-भर के लिए मैं अपने कुटीर से बाहर, बीमार लोगों को

दवाई देने की सेवा के लिए, आँगन में घूमने के लिए, गंगा-स्नान के लिए और क्षेत्र से भोजन लाने के लिए निकलता था। मैंने कभी भी मित्रों के साथ गप्पबाजी में समय नहीं गँवाया। जब मैं क्षेत्र में जाता तो मौन रहता। लोगों से दूरी रखने के लिए मैं जंगल की पगडण्डी पर चला करता। क्षेत्र की ओर जाते समय मैं मानसिक जप के साथ-साथ दीर्घ श्वास-प्रश्वास का अभ्यास करता रहता।

गधों तथा अन्य सभी जानवरों को भी मैं मानसिक नमस्कार करता हूँ। अपने भक्तों और शिष्यों को मैं उनसे पहले ही प्रणाम कर देता हूँ। प्रत्येक नाम और रूप के पीछे मैं वास्तविक सार-तत्त्व को ही देखता हूँ। दैनिक जीवन में वास्तविक वेदान्त यही है।

लोगों को आकर्षित करने के लिए मैंने कमण्डलु के जल की बूँद छिड़क कर मुक्ति दिलाने अथवा स्पर्श मात्र से गहन समाधि में पहुँचा देने जैसे प्रलोभनों का कभी भी प्रयोग नहीं किया। आध्यात्मिक पथ पर विधिवत्



उन्नति करने के लिए मैंने सदैव मौन साधना, जप एवं ध्यान करने के महत्त्व पर बल दिया। मानव-जाति की निष्काम सेवा द्वारा चित्त-शुद्धि के लिए ही मैंने साधकों को प्रेरित किया है।

नये साधकों का पथ-प्रदर्शन

१९३० ई. से मेरे पास पथ-प्रदर्शन के लिए बहुत से साधक आजीवन आध्यात्मिक साधना की ज्वलन्त कामना ले कर आने लगे। मुझमें भी जगत् की सेवा करने की प्रबल आकांक्षा थी। उन दिनों साधु-महात्मा बहुत ही दयनीय अवस्था में थे। उन्हें आवश्यक सुख-सुविधाएँ तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए उचित पथ-प्रदर्शन प्राप्त न था। बहुत से तो चिलचिलाती धूप में तथा हिमालय के कठोर शीत में अपने शरीर को पीड़ित करते थे। कुछ मादक द्रव्यों का पान कर तथाकथित समाधि का अभ्यास किया करते थे।

संन्यासियों तथा योगियों के एक दल को सही दिशा में प्रशिक्षित करने के लिए मैंने कुछ साधकों को पास वाले एक कुटीर में रहने की अनुमति दे दी। मैंने क्षेत्र से उनकी भिक्षा के लिए प्रबन्ध करा दिया तथा उनको दीक्षा दी। मैंने उनके आराम तथा सुविधा के लिए सारे प्रबन्ध कर दिये। उन्हें प्रोत्साहित किया तथा उनके अन्दर वैराग्य भर दिया। मैंने उनके स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया। मैं उनसे साधना के विषय में पूछा करता तथा उनके ध्यान की कठिनाइयों को दूर करने के लिए उपयोगी संकेत दिया करता था। जब वे सेवा करने को प्रस्तुत होते तो मैं उनसे कहता कि कुटिया-कुटिया में जा कर वृद्ध एवं रोगी महात्माओं की भक्ति एवं श्रद्धा-भाव से सेवा करो, उनके लिए क्षेत्र से भोजन लाओ, उनकी टाँगों की मालिश करो और उनके वस्त्र धोओ।

कुछ शिक्षित विद्यार्थियों को मैंने अपने छोटे लेखों की प्रतिलिपि तैयार करके पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करने और अपना शेष समय स्वाध्याय, जप तथा ध्यान में व्यतीत करने को कह दिया। उन्हें मेरे लेखों की प्रतिलिपि तैयार करने में अति आनन्द आता था; क्योंकि उनमें सारे सन्त-महात्माओं के उपदेशों का सार और उपनिषदों एवं गीता के कठिन अंशों की स्पष्ट व्याख्या भी सन्निहित रहती थी। चंचल इन्द्रियों एवं मन के विक्षेपों पर नियन्त्रण हेतु मेरे लेखों में अभ्यासगत पाठ होते थे।

दीर्घ काल तक प्राचीन धर्मग्रन्थों का अध्ययन करते रहने के स्थान में साधक गण मेरे लेखों की प्रतिलिपियाँ तैयार करने में अपना कुछ समय लगाते, जिससे वे कुछ ही समय में सरलतापूर्वक योग तथा दर्शन सीख लेते थे। मैं उनके चेहरों का सूक्ष्म अध्ययन करके उनकी रुचि एवं प्रकृति के अनुरूप ही उन्हें काम देता था। कभी-कभी मुझे स्वयं पूरा कार्य करना पड़ता था।

बूढ़े व्यक्तियों को, जिनके लिए संसार में कोई बन्धन नहीं था, मैंने साधना के लिए प्रोत्साहित किया तथा उन्हें नित्य गंगा में स्नान, अधिकाधिक जप तथा श्रवण करने की राय दी। जब मैं उनके चेहरे पर शान्ति तथा सुख देखता, तो प्रसन्नता से थिरक उठता था। इस प्रकार अधिकाधिक साधक मेरे पास आने लगे। स्वर्गाश्रम उन साधकों की व्यवस्था में समर्थ न हो सका। मैं उस स्थान को पसन्द करता था और वहाँ की शान्ति का आनन्द उठाता था; परन्तु बहुसंख्यक शिक्षित साधकों के हितार्थ मैंने स्वर्गाश्रम छोड़ने का निश्चय किया।

दिव्य जीवन संघ का बीजारोपण

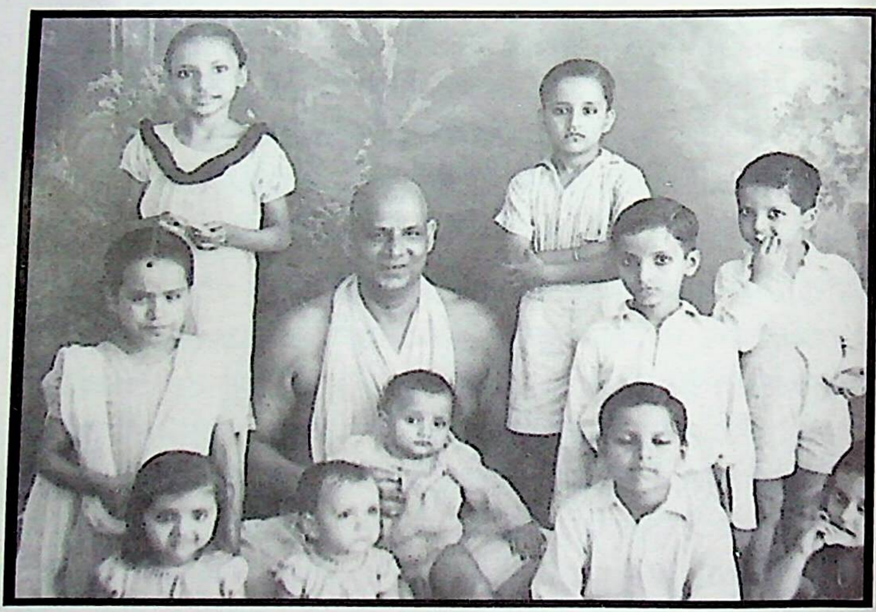
मैं स्वभावतः कभी भी योजनाओं को बनाने में अपना समय नहीं खोता था, ईश्वर-कृपा पर ही आश्रित था। मैं जाता कहाँ? यह एक बड़ी समस्या थी। कुछ दिनों तक मैंने रामाश्रम पुस्तकालय की एक छोटी-सी कोठरी में निवास किया। मेरे कुछ शिष्य निकटवर्ती एक छोटी-सी धर्मशाला में रहने लगे और क्षेत्र से ही अपना भोजन पाते थे। मैं भी कुछ दिनों तक भिक्षार्थ क्षेत्र में गया। समय की बचत के लिए मैं एक साधु द्वारा अपना भोजन क्षेत्र से मँगा लिया करता था। इस प्रकार कई महीने व्यतीत हो गये।

कई महीनों के बाद मुझे निकट में ही एक कुटीर मिल गया जो ध्वंसावस्था में था। दरवाजे तथा खिड़कियाँ लगा कर उसमें कुछ सुधार लाया गया। उस स्थान पर मैंने आठ वर्षों से अधिक निवास किया। मैं सुगमतापूर्वक जंगल में कुछ झोपड़ियाँ बना सकता था; परन्तु वैसा मेरे प्रबल कार्य के लिए ठीक नहीं रहता। पुस्तकें तथा प्रतिलिपियाँ दीमक से सुरक्षित न रह पातीं। मैंने एक धर्मशाला में कई कमरे बने देखे, जिन्हें एक दुकानदार गोशाला के रूप में प्रयोग करता था। इन कमरों में दरवाजे नहीं थे। शनैः-शनैः सब कमरे

साधकों के निवास-स्थान के रूप में परिवर्तित कर दिये गये।

जब भक्त जन मुझे मेरे व्यक्तिगत कार्यों के लिए रुपये देते थे, तो मैं उन्हें 'बीस आध्यात्मिक नियम', 'शान्ति एवं आनन्द का मार्ग', 'चालीस उपदेश' तथा अन्य परिपत्रों को छपवाने में व्यय करके दर्शनार्थियों में उनका वितरण कर देता था। मैं रोगी महात्माओं के लिए औषधि तथा लेखों को समाचार-पत्रों में प्रकाशित करने और साधकों से पत्र-व्यवहार करने के लिए डाक-टिकट खरीदता। शनैः-शनैः कार्य बढ़ चला। मैं साधकों की खोज में बाहर नहीं निकलता था।

सच्चे साधक बड़ी संख्या में मेरे पास सहायता तथा पथ-प्रदर्शन के लिए आने लगे। उन सभी ने मुझसे दीक्षा ली तथा वे धर्मशाला के सामने वाले कमरों में रह कर अहर्निश कार्य करने लगे। कार्य-भार सँभालने के लिए मैंने एक टाइप राइटर तथा डुप्लिकेटर मँगवाये। जगत् के आध्यात्मिक उत्थान के लिए इस ईश्वरीय कार्य में लोगों ने बड़ी दिलचस्पी दिखायी। मेरे प्रति उनकी अगाध भक्ति थी। अपने अतीत को भूल कर सेवा तथा साधना के द्वारा उन्नति प्राप्त करने के लिए वे कार्य में निमग्न हो गये। भक्तों ने इस कार्य के लिए धर्म-दान दिये। पाँच साधकों के लिए मैं ऋषिकेश के काली कमली



वाले क्षेत्र से सूखा अन्न प्राप्त कर लेता था, अन्य साधकों तथा अतिथियों के लिए मैं अपने कुछ भक्तों से प्राप्त धर्म-दान से किसी तरह प्रबन्ध करता था। मैंने कुछ पुस्तकें भी बिक्री के लिए छपवायीं।

बहुत से नये योग्य साधकों के आने पर मैंने उनकी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार विभिन्न कार्य-क्षेत्र प्रारम्भ किये। मैंने उनकी योग्यताओं तथा गुप्त क्षमता का ज्ञान करके उन्हें अपने-अपने मार्ग में प्रोत्साहन दिया। तब कठिन श्रम करने वाले साधक गण, दर्शनार्थी तथा असमर्थ साधकों के भोजन के प्रबन्ध हेतु एक छोटा-सा रसोईघर भी आरम्भ हो गया। मैं भक्तों, उच्च विद्यालयों, पुस्तकालयों तथा धर्मदाताओं और संन्यास-मार्ग के विभिन्न प्रकार के भक्तों के नाम तथा पते कापियों में रखता था तथा पुस्तक छपने पर प्रचारार्थ उनके पास भेजता था। उनके पते विभिन्न शीर्षकों के नीचे सुव्यवस्थित रूप से लिखे गये थे।

संकटकालीन-स्थिति

छात्र अधार्मिक बन गये थे।
धर्म में उनकी श्रद्धा नहीं रह गयी थी।
विज्ञान के प्रभाव में पड़े वे धर्म की उपेक्षा करने लगे।
वे धूम्रपान करने तथा जुआ खेलने लगे।
लड़कियाँ फैशन में पड़ गयीं।
अधिकारी गण भौतिकवादी बन गये।
जन-स्वास्थ्य क्षीण हो चला।
लोग धर्मग्रन्थों से घृणा करने लगे।
भौतिकवाद का बोलबाला हो चला।
इस संकट-काल में,
ईश्वर की महिमा को पुनः जाग्रत करने के लिए
योग के ज्ञान के प्रचार के लिए
समन्वययोग की शिक्षा देने के लिए
लोगों में भक्ति एवं श्रद्धा भरने के लिए

मानव-जाति के आध्यात्मिक उत्थान हेतु कार्य करने के लिए
हर घर में शान्ति एवं सुख लाने के लिए
मैंने दिव्य जीवन संघ की स्थापना की
तथा हिमालय के पवित्र मनहर प्रदेश में
ऋषिकेश में पवित्र गंगा के तट पर—
योग-वेदान्त अरण्य अकादमी स्थापित की।

जब मनुष्य स्वार्थ, लोभ, काम, राग आदि में फँस जाता है, तब वह ईश्वर को भूल जाता है। वह सदा अपने शरीर, परिवार तथा सन्तान के चिन्तन में लगा रहता है। वह सदा अपने भोजन, पान, विश्राम तथा सुविधाओं के पीछे परेशान रहता हुआ संसार-सागर में निमग्न हो जाता है। भौतिकवाद तथा पलायनवाद का ही साम्राज्य है। वह साधारण-सी बातों से ही उत्तेजित हो उठता है और झगड़ने लगता है। सर्वत्र अशान्ति, दुःख, शोक तथा विद्रोह छाया हुआ है। आज सारा जगत् ही भौतिकवाद के पंजे में आ गया है। नये प्रकार के बमों के आविष्कार से सर्वत्र आतंक छाया हुआ है। सद्ग्रन्थों तथा ऋषियों के सदुपदेशों में लोगों की श्रद्धा नहीं रही है। कुशिक्षा तथा कुप्रभावों के कारण लोग अधार्मिक बन गये हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ-काल से होने वाली आतंकपूर्ण घटनाओं का प्रभाव सभी धार्मिक व्यक्तियों, संन्यासियों, सन्तों तथा धार्मिक पुरुषों पर पड़े बिना नहीं रहा। विश्व-युद्ध की भयंकरता से उनके हृदय पिघल पड़े। युद्धोपरान्त होने वाले संक्रामक रोग तथा विश्वव्यापी निराशा ने उनके कारुणिक हृदय को छू लिया। उन्होंने देखा कि मानव-जाति के अधिकांश दुःख उसके ही कर्मों के कारण हैं। मनुष्य को अपनी भूलों के प्रति अवगत कराना तथा उन्हें सुधारने के लिए बाध्य करना आवश्यक है, जिससे वह अपने जीवन को उन्नत लक्ष्यों के लिए उत्साहपूर्वक लगा सके। यही इस युग की तात्कालिक अपेक्षा अनुभव हुई।

ऐसे पथ-प्रदर्शन के लिए लाखों मनुष्य उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह मूक प्रार्थना सुनी गयी। मैंने दिव्य जीवन संघ के जन्म को देखा, जिसका कार्य है मनुष्य को पाशविक एवं आसुरी शक्तियों से छुड़ा कर उसके

इहलौकिक जीवन को दिव्य बनाना।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

ठीक इस संकटपूर्ण समय में ही मैंने द डिवाइन लाइफ सोसायटी की स्थापना की। अब लोग इसे जगत् के लिए वरदान-स्वरूप मानते हैं। विश्व के समस्त धर्मों तथा सारे सन्तों एवं पैगम्बरों के उपदेशों का सार ही इसका आधार है। इसके सिद्धान्त सार्वभौमिक, उदार, सर्वग्राही एवं विज्ञान तथा बुद्धि के अनुकूल हैं। इसने बाह्य नाम-रूपों के पीछे छिपे हुए आनन्दमय दिव्यत्व के साक्षात्कार से मनुष्य को इस जागतिक जीवन के दुःखों एवं शोकों से ऊपर उठाने का कार्य अपने हाथ में लिया है।

अच्छे विचार सभी भले मनुष्यों में व्याप्त होते तथा अपना प्रभाव डालते हैं। दिव्य जीवन संघ द्वारा उत्पन्न विचार-धाराओं का प्रभाव यूरोप तथा अमेरिका के लोगों पर पड़ा है। फल-स्वरूप अब अखिल विश्व में शान्ति की पिपासा बढ़ चली है। लाखों व्यक्ति प्रक्षेपणास्त्रों के द्वारा मानव-जाति के त्वरित विनाश से भयभीत हैं।

दिव्य जीवन संघ एक सर्वग्राही एवं सर्वसन्निहित संस्था है। इसके उद्देश्य, आदर्श तथा लक्ष्य अत्यन्त उदार और व्यापक हैं। यह किसी भी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का विरोध नहीं करता। इसमें सभी धर्मों तथा मतों के आधारभूत सिद्धान्त सन्निहित हैं। इनमें कोई सम्प्रदायपरक मत-मतान्तर नहीं है। यह लोगों को आध्यात्मिक मार्ग की ओर अग्रसर करता है। यह संस्था संसार में रहते हुए किसी विशेष सम्प्रदाय अथवा धर्म के सिद्धान्तों का पालन करते हुए भी मनुष्यों को सरलतापूर्वक दिव्य जीवन की ओर अग्रसर होने में समर्थ बनाती है।

इस संस्था ने समस्त संसार में प्रबल चेतना जाग्रत की है और कर्म करने में स्वतन्त्रता का नवजीवन, सांसारिक झंझटों के मध्य सामंजस्यपूर्ण जीवन एवं मानसिक निरासक्ति तथा कामनाओं, अहंभाव और मैंपन के त्याग द्वारा सुखी जीवन का मार्ग प्रशस्त करने में इस संघ का महान् योगदान है। संघ के सिद्धान्त, लक्ष्य, आदर्श तथा कार्य-प्रणाली को सार्वलौकिक प्रशंसा प्राप्त है। यह साधना के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल देता है। यह वैज्ञानिक तथा युक्तिसंगत ढंग से समन्वययोग की शिक्षा देता है। जगत् के सभी भागों

से विभिन्न संस्थाओं एवं समाजों के सदस्य दिव्य जीवन संघ के सदस्य बन कर मुझे आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने हेतु पत्र लिखते हैं। मैं उनका विशेष ध्यान रखता हूँ तथा पत्र-व्यवहार द्वारा आध्यात्मिक प्रगति के लिए उन्हें प्रेरित करता हूँ। दिव्य जीवन संघ की यह घोषणा है कि कोई भी व्यक्ति जीवन के किसी भी आश्रम एवं अवस्था में हो—चाहे वह ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी हो; चाहे मेहतर, ब्राह्मण, शूद्र अथवा क्षत्रिय हो; जगत् का व्यस्त व्यक्ति हो अथवा हिमालय का मूक साधक—वह ज्ञान प्राप्त कर सकता है। दिव्य ज्ञान पर संन्यासियों का ही एकाधिकार नहीं है।

संघ यह समझाता है कि ज्ञानयोग का केन्द्रीय आधार होने पर भी मन तथा हृदय की शुद्धि के लिए कर्मयोग आवश्यक है। सुन्दर स्वास्थ्य, शक्ति तथा प्राण की शुद्धि और चित्त की स्थिरता के लिए 'हठयोग' की, संकल्पों के नाश तथा ध्यान में एकाग्रता लाने के लिए 'राजयोग' की और अविद्या के आवरण को दूर करके अन्ततः अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप में निवास करने के लिए 'ज्ञानयोग' की आवश्यकता है।

शिवानन्द आश्रम

संसार के सभी भागों से जिज्ञासु साधक पत्र-व्यवहार के द्वारा पथ-प्रदर्शन प्राप्त करते हैं। बहुत से विदेशी साधक आश्रम में आ कर कुछ सप्ताह अथवा माह ठहर कर आश्रम के कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। शिवानन्दनगर के निवासी—युवक तथा वृद्ध, नर तथा नारी— सभी इस पावन केन्द्र के सुख एवं शान्ति का उपभोग करते हैं और यहाँ रहकर समस्त विश्व की सेवा करते हैं। वे सभी मेरी व्यक्तिगत देख-रेख में रहते हैं। मैं उन सबको सारे सुख एवं सुविधाएँ प्रदान करता हुआ, उनकी आध्यात्मिक प्रगति के विकास के लिए सहायता करता हूँ।

आज आश्रम ४०० व्यक्तियों--विद्वान् तथा सुसंस्कृत जन, महात्मा, योगी, भक्त, निर्धन तथा रोगियों का—निर्वाह करने में समर्थ है। पड़ोस के गाँवों के विद्यार्थी भी यहाँ स्कूल में आ कर शिक्षा ग्रहण करते हैं, इसका तो कहना ही क्या!

अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायों के नेता लोग तथा अनुयायी जन भी आश्रम में आ कर ठहरते हैं और वे इस आश्रम को एक सार्वजनिक मंच के रूप में विश्व-

सेवा का आदर्श केन्द्र मानते हैं। मैं अपने समक्ष एक विशाल आध्यात्मिक उपनिवेश (बस्ती) देखता हूँ जिसके प्रत्येक निवासी के मुख पर प्रसन्नता एवं आनन्द है। लोग आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नति जैसी कई भावनाएँ ले कर यहाँ आते हैं, उनकी अधिकांश कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, जिससे उन्हें अति-आश्चर्य होता है। उस परमात्मा की जय हो, जिसने सभी प्रकार के सत्यान्वेषियों के लिए यह एक आदर्श केन्द्र प्रदान किया है!

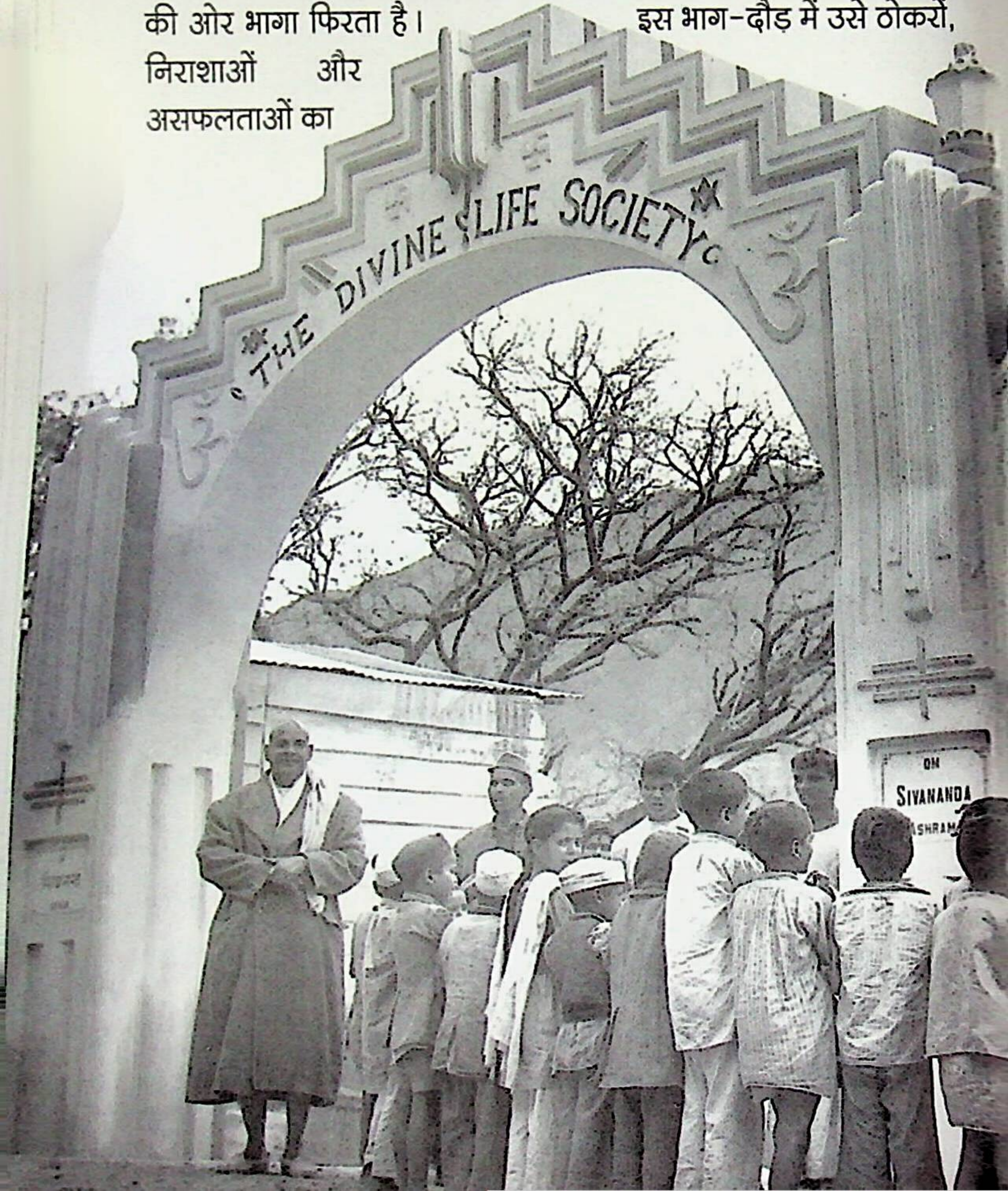


2

दिव्य जीवन

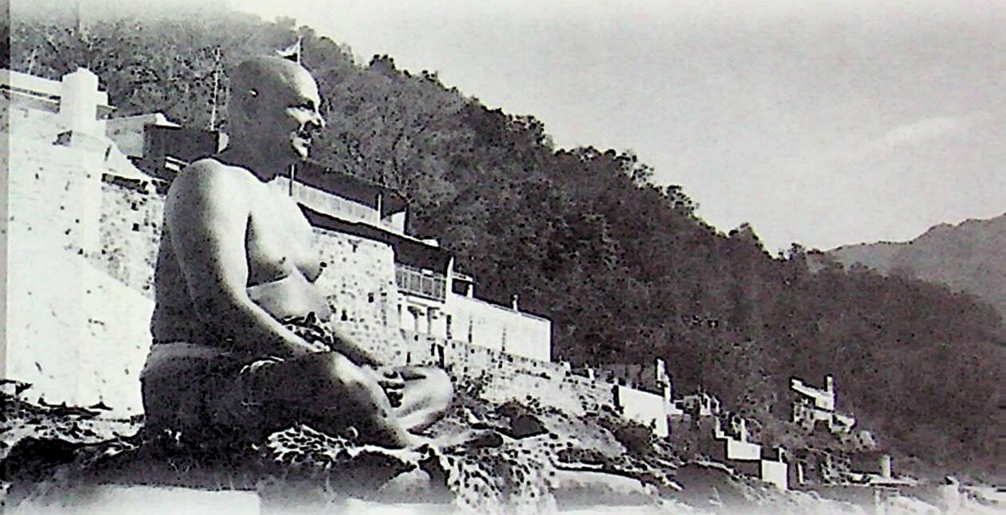
परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

मानव सुख चाहता है। वह धन-सम्पत्ति, पद-मान, स्त्री-पुत्र इत्यादि में इसे प्राप्त करना चाहता है। इसी की प्राप्ति के लिए वह एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर भागा फिरता है। इस भाग-दौड़ में उसे ठोकरों, निराशाओं और असफलताओं का



सामना करना पड़ता है। वह कभी प्रसन्न होकर नृत्य करता है तो कभी रोता और चिल्लाता है। इसी में उसकी इन्द्रियों की शक्ति निःशेष हो जाती है। वस्तु-पदार्थों से वह निराश हो जाता है और अन्ततः उसे अनुभव हो जाता है कि विषय-वस्तुएँ भ्रामक हैं तथा वास्तविक और शाश्वत सुख उनसे प्राप्त नहीं हो सकता।

निर्जीव नाम की कोई वस्तु नहीं है। प्रत्येक वस्तु में जीवन है। पत्थर के टुकड़े में भी जीवन है। प्रत्येक वस्तु-पदार्थ में जीवन स्पन्दित हो रहा है, इसे आधुनिक वैज्ञानिकों ने निर्णायक रूप से सिद्ध कर दिया है। हरी घास और महकते फूलों के साथ मुस्कराएँ। तितलियों, पक्षियों और मृगों के साथ क्रीड़ा करें। झाड़ियों, कोंपलों और वृक्षों की डालियों से हाथ मिलाएँ। इन्द्रधनुष, पवन, सूर्य और सितारों से बातें करें। बहते झरनों और

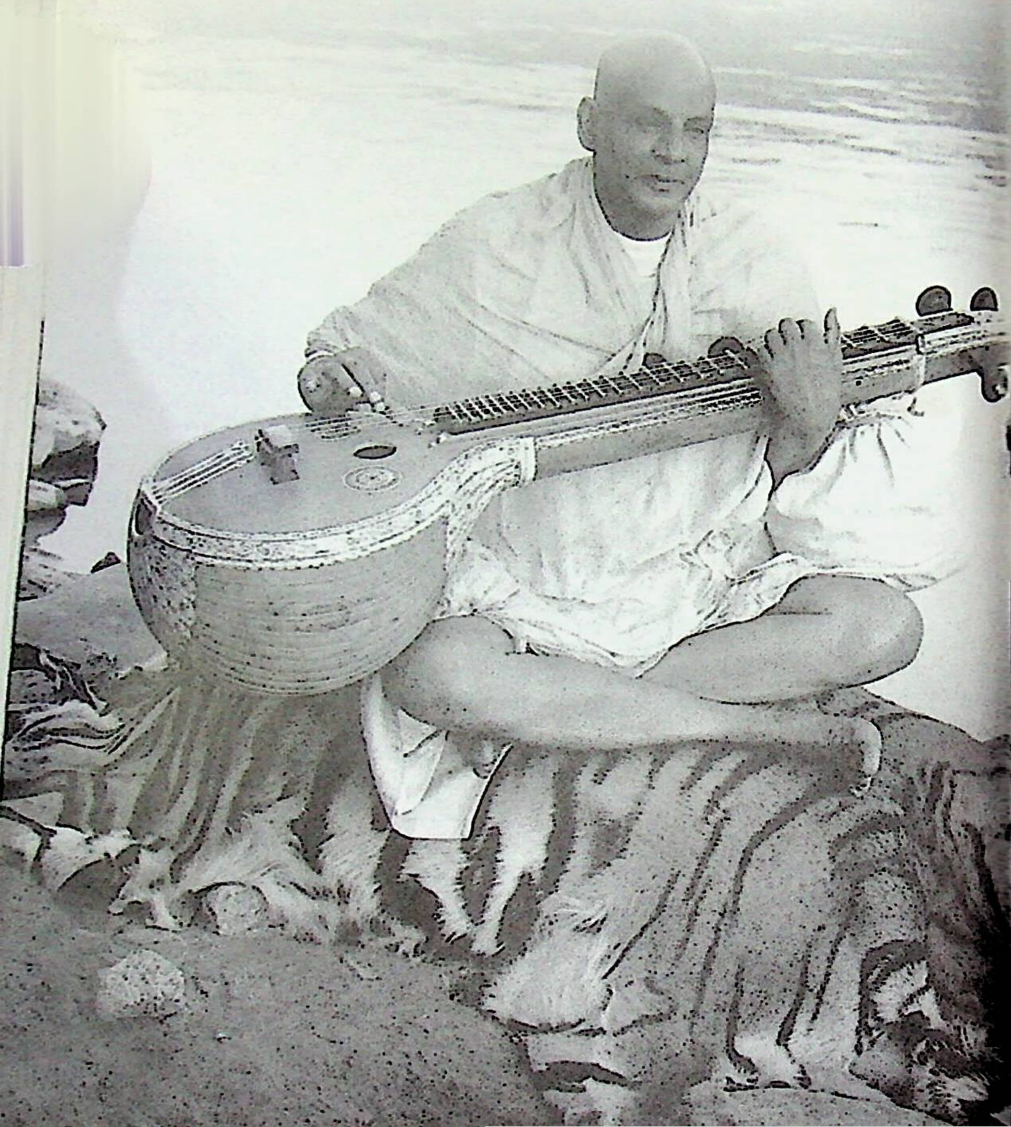


सागर की लहरों के संग वार्तालाप करें! अपनी छड़ी से बातचीत करें। अपने सभी निकटवर्तियों—कुत्तों, बिल्लियों, गायों, मनुष्यों, पेड़-पौधों और फूल-पत्तों—सभी से मित्रता का नाता जोड़ें। तब आपका जीवन एक विशाल, परिपूर्ण, सम्पन्न और भरा-पूरा जीवन होगा। और आप जीवन की एकता अथवा एकत्व को अनुभव करेंगे। इस भावना को शब्दों द्वारा बताया नहीं जा सकता। आप इसका अनुभव करके ही इसे जान सकेंगे।

सशक्त मन, दुर्बल मन के ऊपर प्रभाव डालता है। मन का शरीर पर

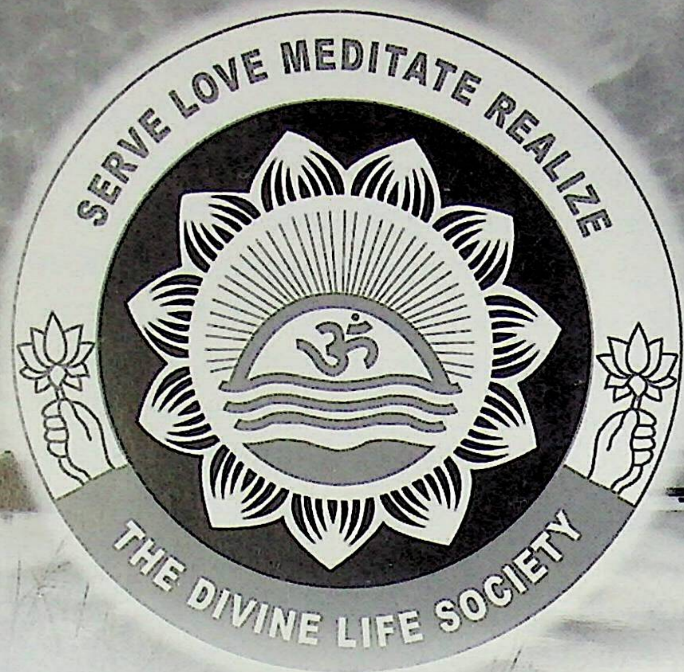
प्रभाव होता है। मन वस्तु-पदार्थों पर भी प्रभाव डालता है। मन बन्धन-कारी है। मन ही मुक्ति-प्रदाता है। मन शैतान है। मन ही आपका मित्र भी है। मन आपका गुरु है। आपको मन को वश में करना होगा। मन को अनुशासित करना पड़ेगा। मन को नियन्त्रित करना होगा। यह आपका अति आवश्यक कर्तव्य है।

अपनी संवेदनाओं और मनोभावों को जाँचें। उनका विश्लेषण करें। इन संवेदनाओं और मनोभावों के साथ तादात्म्य न जोड़ें। इन भावनाओं से स्वयं



को अलग कर लें। इन भावनाओं और संवेदनाओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लेना ही क्लेश और बन्धन का कारण है। क्रोध मन की एक वृत्ति है। हमारे निज स्वरूप अथवा वास्तविक 'मैं' अथवा आत्मा में कोई वृत्ति नहीं है। सांसारिक व्यक्ति क्रोध नामक इस वृत्ति से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है और दुःख पाता है। वह कहता है, "मैं क्रोधित हूँ।" यह अज्ञान है। शरीर और मन तो आपके उपकरण मात्र हैं। अपना तादात्म्य उस बड़ी 'मैं' अथवा परमात्मा के साथ स्थापित करें तथा शरीर और मन का उपयोग उपकरण अथवा साधन समझ कर करें। आप अपने शरीर एवं मन के मालिक हैं। आप मन और शरीर-रूपी इस इंजन के चालक हैं। इस बात को दृढ़तापूर्वक मान कर रखें और मुक्त हो जाएँ। इस शरारती और नटखट मन की चालाकियों को समझें। अत्यन्त दीर्घ काल से यह आपको अपनी इच्छानुसार नचाता आ रहा है। अब इस मन को अपने वश में कर लें। आप यदि चाहें, तो ऐसा कर सकते हैं।





3

दिव्य जीवन का प्रतीक (क्रैस्ट)

द डिवाइन लाइफ सोसायटी (दिव्य जीवन संघ) का प्रतीक, आत्म-साक्षात्कार के चार महान् पथ, यथा—कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग और ज्ञानयोग के समन्वय का द्योतक है। यह सोसायटी मुख्यतया योग की महान् पद्धति के सभी अंगों को प्रस्तुत करती है, अतः इसने ऐसे प्रतीक का चयन किया है जो आध्यात्मिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष को दर्शाता है। प्रतीक में प्रयुक्त चार आदर्श शब्द—सेवा, भक्ति, ध्यान, साक्षात्कार—इन चार योगों के ही परिचायक हैं।

प्रतीक में दर्शाये गये 'दो हाथ, जो कमल-पुष्प अर्पित कर रहे हैं,' सभी कर्मों को प्रभु-चरणों में विनम्र-समर्पित करने के द्योतक हैं; यही कर्मयोग का मार्ग है जिसके द्वारा कर्म के प्रति आसक्ति की समाप्ति होती है तथा प्रेमपूर्वक कर्तव्य-पालन होता है। कमल-पुष्प को हाथों द्वारा दृढ़तापूर्वक पकड़े होना, इस तथ्य का प्रतीक है कि जो व्यक्ति कर्मयोग में स्थित हो चुका है, वास्तव में समन्वय-योग उसकी पकड़ में है और समन्वय-योग का अभ्यास ही 'दिव्य जीवन' है। 'सागर की लहरें' भक्तियोग के मार्ग पर चलने वाले उस साधक-भक्त की परिष्कृत भावनाओं की द्योतक हैं, जिसकी

अनुरक्तियाँ 'प्रभु-प्रेम' की ओर उन्मुख हो गयी हैं। भक्त के 'प्रभु-प्रेमासक्त' 'हृदय-सागर' से ही यह प्रेम तरंगें उमड़ रही हैं। प्रतीक की परिधि बनाने वाली कमल की पंखुड़ियाँ उस राजयोग के पथ को दर्शाती हैं जिसके द्वारा साधक धीरे-धीरे उन सभी मनःस्तरों अथवा केन्द्रों का अतिक्रमण कर जाता है, जिनका आकार कमल जैसा है। भ्रूमध्य का चक्र राजयोग में ध्यान का मुख्य केन्द्रबिन्दु है। उदीयमान सूर्य जो अपने बीचों-बीच 'ॐ' का चिह्न लिये हुए है, वह ज्ञानयोग की साधना द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान के उदय होने को तथा आत्म साक्षात्कार को दर्शाता है। क्योंकि राजयोग की पद्धति में भक्ति और ज्ञान दोनों के ही कुछ पहलुओं का समावेश है, इसलिए सागर तथा उदीयमान सूर्य कमल की परिधि के भीतर दर्शाये गये हैं।

यह 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी' का सम्पूर्ण प्रतीक है।





4

द डिवाइन लाइफ सोसायटी तथा इसके सुविख्यात संस्थापक

परम पूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी महाराज

सुव्यवस्थित संस्थापन

अन्य आध्यात्मिक संस्थाओं की भाँति 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी' की स्थापना परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने कुछेक विस्तृत उद्देश्य एवं लक्ष्यों को ले कर की थी, यथा—आध्यात्मिक विद्या का प्रचार-प्रसार, आध्यात्मिक जिज्ञासुओं की सहायता, साधु-महात्माओं की सेवा, निर्धनों एवं रोगियों की निःशुल्क चिकित्सीय सहायता तथा सामान्यतया मानव-जाति के उत्थान के लिए जो-कुछ भी करना आवश्यक है, उसे यथासम्भव करना। इस संस्था के अपने उत्तरदायित्वपूर्ण पदाधिकारी, अनेकों शाखाएँ तथा संसार-भर में सहस्रों की संख्या में सदस्य हैं। इसकी आय और व्यय के खाते भली-भाँति रखे जाते हैं तथा निश्चित समय पर लेखापरीक्षित (ऑडिट) होते हैं। इसकी गतिविधियों के विवरण का इसकी वार्षिक रिपोर्ट में पुनरावलोकन किया जाता है।

अनवरत विकास एवं उन्नति

मुझे स्पष्ट स्मरण है कि जब १९३६ में सोसायटी की संस्थापना हुई थी, तब श्री स्वामी शिवानन्द जी निजी सुख-सुविधाओं की किंचित् भी परवाह किये बिना, एक जीर्ण-शीर्ण कुटीर में रहते हुए, सदैव पुस्तकें लिखने में व्यस्त रहते थे, वे जिज्ञासु साधकों को डाक द्वारा निर्देशन लिख-लिख

कर भेजते थे और भोजन के लिए क्षेत्रों से मिलने वाली भिक्षा पर निर्भर करते थे। गत २५ वर्षों से निरन्तर की गयी इस मूक-सेवा के प्रति हार्दिक सम्मान भाव से, विश्व-भर से लाखों प्रशंसक श्री स्वामी शिवानन्द जी के प्रति सम्मान प्रकट करने आते हैं। इस महान् सन्त एवं उसकी कृतियों से लाभान्वित हुए ये लोग अपना आभार प्रकट करने के लिए स्वेच्छापूर्वक आश्रम को वित्तीय अथवा अन्य किसी भी रूप में सहयोग देते हैं।



सफलता का रहस्य

संस्था को भली-भाँति सफलतापूर्वक चलाने के लिए आश्रम के अन्तेवासियों के प्रति श्री स्वामी जी ने जो नियम बनाये हुए थे, उनके जो सिद्धान्त थे, जो कार्य करने का ढंग था, उसके सम्बन्ध में जानना बहुत ही रुचिकर है।

श्री स्वामी जी को अत्यन्त निकटता से और गहराई से देखने तथा संस्था की गतिविधियों को बिलकुल आरम्भ से ही जानने के कारण मैं यह अत्यन्त भली-भाँति जानता हूँ कि उन्हें कभी

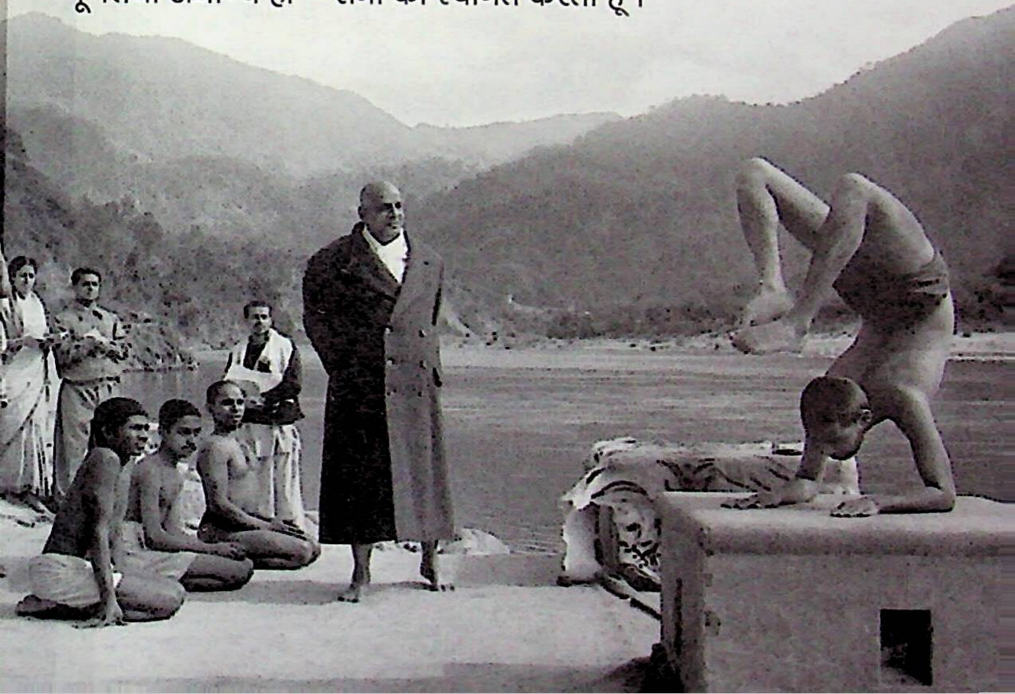
कोई चमत्कारी शक्ति का प्रयोग नहीं करना पड़ा। साधक जिज्ञासुओं को आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए अथवा सफल धर्मोपदेशक बनाने के लिए उन्होंने कभी भी किसी को झूठी आशाएँ अथवा काल्पनिक स्वप्न नहीं दिखाये। संस्था को चलाने के लिए उन्होंने कभी भी धनी लोगों से वित्तीय सहायता की माँग नहीं की।

यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि द डिवाइन लाइफ सोसायटी का छापाखाना, प्रकाशन विभाग, आयुर्वेदिक फ़ारमेसी, अन्नक्षेत्र, चिकित्सालय तथा संस्था से सम्बन्धित अन्य कोई भी विभाग या संस्था कभी भी व्यावसायिक दृष्टि से नहीं चलायी गयी है। असंख्य शिष्य, सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित लोग, भली-भाँति प्रशिक्षित योगी, उच्च पदाधिकारी, आश्रम के सभी अन्तेवासी तथा देश-विदेशों से आने वाले वाले भक्त—सभी यह बात गहराई से अनुभव करते हैं कि यह सब केवल स्वामी जी के महान् व्यक्तित्व तथा उनके अनुपमेय एवं अथक प्रयासों का ही परिणाम है कि द डिवाइन लाइफ सोसायटी की गतिविधियों की इतनी शीघ्र, इतनी अधिक उन्नति सम्भव हो पायी है, वास्तव में यह उन सभी के असामान्य सहयोग—वित्तीय अथवा अन्य किसी कार्य के सहयोग—के कारण से नहीं है।

विलक्षण एवं अद्भुत ढंग और नीति

अन्य संस्थाओं के विपरीत, इस संस्था के बहुत कठोर अथवा दुर्नम्य नीति-नियम नहीं हैं। इसके पास न तो कोई बहुत श्लाघ्नीय पूंजी है, न ही इतने विशाल स्तर पर किये जाने वाले खर्च को पूरा करने के लिए नियमित आय का साधन ही है। ईश्वर की कृपा से भक्तों से प्राप्त होने वाली दान-राशि से ही इसका दैनिक खर्चा चलता है। इसकी जमापूँजी सदैव शून्य रहती है। स्वामी जी की ऐसी अद्भुत नीति को देख कर हम आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। उनके अपने शब्दों में, "सभी सत्यान्वेषियों का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ। यहाँ आपको सभी सुख-सुविधाएँ और आराम मिलेगा तथा यहाँ आप पूर्णतया अपनत्व पायेंगे। सभी जिज्ञासु साधक यहाँ आ कर जितनी देर तक चाहें, रह सकते हैं तथा अपने जिस किसी भी धर्म का पालन करते रह सकते हैं। वह (आमिष भोजन के अतिरिक्त) जैसा चाहें, अपने स्वभाव, रुचियों और शरीर की आवश्यकताओं के अनुसार खा, पहन

और रह सकते हैं। यदि वे चाहें तो किसी भी विभाग में सेवा कर सकते हैं और निष्काम सेवा के द्वारा आत्मोन्नति कर सकते हैं। यदि वे अपना सारा-का-सारा समय और शक्ति जप, प्रार्थना, ध्यान और स्वाध्याय में ही लगाते हैं, तो मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होती है। तब मैं अत्यन्त सावधानीपूर्वक उनकी आवश्यकताओं और सुख-सुविधाओं का ध्यान रखता हूँ। आश्रम से उन्होंने जो-कुछ भी सामान लिया हुआ है, उसे किसी भी समय, जब भी उनकी इच्छा हो, अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक ले कर जा सकते हैं और जहाँ चाहें, जैसा भी चाहें, किसी कार्यालय के कार्यकर्ता बन कर अथवा अन्य जिस प्रकार भी चाहें अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं, द डिवाइन लाइफ सोसायटी की शाखा प्रारम्भ कर सकते हैं, अथवा अपने नाम से ऐसी ही कोई अन्य संस्था आरम्भ करके भला जीवन व्यतीत कर सकते हैं। लोग जब मेरे पास आते हैं तो मैं उनके शिक्षा, सामर्थ्य, योग्यता, गुण अथवा अवगुण नहीं देखता। मैं कभी भी उनके चरित्र के प्रमाण-पत्रों के विषय में नहीं पूछता। मैं कभी उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि भी नहीं पूछता। मैं सभी पुरुषों, स्त्रियों, युवकों, महान् विद्वानों, दार्शनिकों, रोगियों और निर्धनों, यहाँ तक कि आलसी लोगों तथा जो आध्यात्मिक पथ पर चलने के लिए पूर्णतया अयोग्य हों—सभी का स्वागत करता हूँ।"



हम सब यह देख कर उलझन में पड़ जाते कि ऐसे विलक्षण नीति-नियमों एवं ऐसे मिश्रित प्राणी-समुदाय के साथ स्वामी जी कैसे इतनी सफलतापूर्वक संस्था को चला रहे हैं।

जब स्वामी जी आश्रम के मुख्य कार्यालय में आते हैं, तो वे अतिथियों और कर्मचारियों का कॉफी, चाय, बिस्कुट, मिठाइयों और फलों से स्वागत करते हैं। कभी-कभी वे अतिथियों और अन्तेवासियों को किसी भी भाषा में संक्षिप्त भाषण देने अथवा थोड़ा-सा भजन-कीर्तन करने के लिए कहते हैं। इसके साथ-साथ वे अपना दैनिक कार्य भी देखते जाते हैं।

वह कभी भी यह दावा नहीं करते कि उनके पास योग-शक्तियाँ हैं; किन्तु उनके कार्यों के परिणामों को देखते हैं, तो हमें प्रत्येक पग पर 'चमत्कार' ही दिखायी देते हैं। जब हम ध्यानपूर्वक गहराई में जाते हैं, तो यही परिणाम निकलता है कि आश्रम का अस्तित्व केवल एक महान् चमत्कार ही है।

सहज-सरल प्रारम्भ

१९३६ में जब सोसायटी की स्थापना की गयी थी, तब श्री स्वामी जी ने अपनी नीति का स्पष्टतया वर्णन किया है। उनके एक शिष्य ने संस्था की गतिविधियों के विस्तारीकरण के लिए कोष-वृद्धि के सम्बन्ध में जब कुछ सुझाव दिये, तब उनके उत्तर में उन्होंने यह कहा था। वह कहते हैं—

"सोसायटी को विकसित करने के लिए वित्त-संग्रह हेतु मैं पंजाब में प्रवचन-शृंखला-यात्रा नहीं कर सकता। संस्था विकसित होती है या नहीं, इसकी मैं परवाह नहीं करता। मैं तो केवल प्रत्येक स्थान पर आध्यात्मिक कार्यों के लिए दिव्य तरंगें तथा अनुकूल वातावरण का निर्माण करना चाहता हूँ। सभी व्यक्ति हिमालय की एकान्त गुफाओं में जा कर कठिन साधना नहीं कर सकते! निरन्तर जप और ध्यान करने से भी निद्रा और अलसाहट घेरने लगती है। एक ही प्रकार की साधन-प्रक्रिया पर स्थिर रहना भी लोगों को कठिन लगता है। अत्यधिक स्वाध्याय भी घबराहट उत्पन्न कर देता है। वर्तमान परिस्थितियों में सामान्य व्यक्ति के लिए योग के उन्नत अभ्यास भी कठिन प्रतीत होते हैं। आध्यात्मिक उन्नति, शान्ति, प्रसन्नता तथा उत्तम

स्वास्थ्य की शीघ्र और सहज प्राप्ति के लिए ऐसी दिनचर्या बनानी होगी जिसमें प्रार्थना, जप, ध्यान, स्वाध्याय, कीर्तन तथा मौन साधना के लिए पर्याप्त समय हो और फिर इस कार्यक्रम पर बिना ढील दिये स्थिरतापूर्वक लगे रहना होगा। इसमें हल्का शारीरिक व्यायाम, थोड़ा-सा प्राणायाम तथा सरल आसन भी सम्मिलित कर लेने चाहिए। जप और प्रार्थना का समय बढ़ाते जायें।

सद्‌गुणों को विकसित करें। बुरे स्वभाव को नष्ट कर दें। शक्तिशाली, दुर्दम्य इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखें। सत्संग करें। आध्यात्मिक रुचि-सम्पन्न व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करें। महात्माओं, रोगियों और दरिद्रों की सेवा करें। सेवा के द्वारा स्वयं को उन्नत करें। कोई ठोस कार्य करें। अपने कार्यों का विवरण मुझे भेजें। जो भी व्यक्ति थोड़ा-बहुत साधना में लगा हुआ है, वह स्वयं को 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी' का सदस्य मान सकता है। जो सत्य के पथ पर अग्रसर है, वह मेरा शिष्य बन सकता है। अपने ही निवास-



स्थान पर 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी' की शाखा प्रारम्भ करें तथा अवकाश के दिन कम-से-कम एक-आध घण्टे के लिए भजन-कीर्तन और स्वाध्याय के लिए अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों को एकत्रित कर लें। यदि शाखा के लिए सदस्य जुटाने में कठिनाई आ रही हो तो अपने ही परिवार के सदस्यों, बच्चों और सेवकों को भी इसमें सम्मिलित कर सकते हैं। आध्यात्मिक उपदेशों के छोटे-छोटे परिपत्र छपवायें तथा उन्हें अपने मित्रों में बाँट दें। आज बीजारोपण करें और देखें कि यह धीरे-धीरे विकसित हो कर संसार में सुखद परिणाम फलित करेगा।"



इस प्रकार अत्यन्त सरल, सहज और सीधे-सादे ढंग से प्रारम्भ करके श्री स्वामी शिवानन्द जी समस्त विश्व-भर में आध्यात्मिक गतिविधियों के सैकड़ों केन्द्र स्थापित करने में सफल हुए। आज ऐसे इन केन्द्रों में भारी संख्या में भक्त एकत्रित होते हैं तथा सामूहिक साधना करते हैं, वे स्वामी जी से पत्र-व्यवहार एवं सीधे सम्पर्क द्वारा सहायता एवं निर्देशन प्राप्त कर लेते हैं।

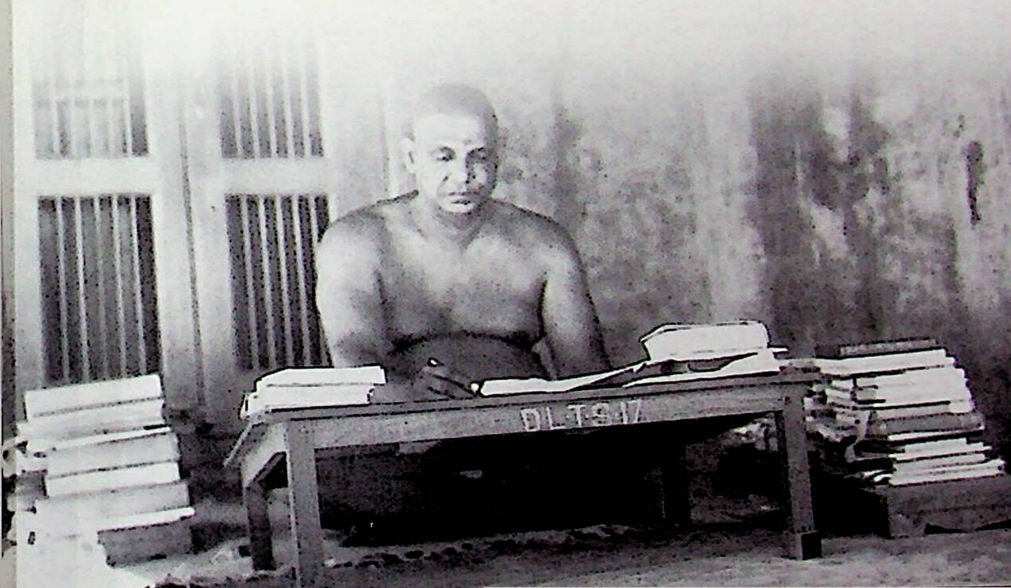
उदार दृष्टिकोण

आध्यात्मिक गतिविधियों के केन्द्र स्थापित करने के लिए श्री स्वामी जी अपना नाम उपयोग में लाने की स्वीकृति सहर्ष दे देते हैं तथा इस कार्य में यथासम्भव सहायता करते हैं। यदि लोग उनके नाम का प्रयोग करके ऐसे केन्द्रों का उपयोग धन कमाने

में अथवा स्वयं अपने नाम-यश के लिए करते हैं, तो भी स्वामी जी को कोई आपत्ति नहीं होती। शुरू-शुरू में हम सबको यह आशंका थी कि स्वामी जी यदि ऐसी ही नीति अपनाये रखेंगे तो मुख्यालय आश्रम का कार्य सफलतापूर्वक नहीं चल सकेगा। किन्तु अपने सभी संशयों के पूर्णतया विपरीत हम एकदम स्पष्ट देख रहे हैं कि ऐसे उदार विचारों के कारण सोसायटी विश्व-भर में इतनी प्रसिद्ध हो रही है। अत्यन्त अल्प समय में ही उन्होंने ऐसे स्वार्थी लोगों के हृदय इस प्रकार पूर्णतया परिवर्तित कर दिये हैं कि वे सब अब निःस्वार्थी एवं सक्रिय साधक बन गये हैं तथा उनके केन्द्र आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तृत प्रचार-प्रसार के आदर्श केन्द्र बन गये हैं।

सबका विकास

जब श्री स्वामी जी ऐसे लोगों को आश्रम में रख लेते हैं जो किसी भी प्रकार से उपयोगी नहीं हैं और जो नकारात्मक प्रवृत्ति के हैं, तब हमारा ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है कि इससे संस्था के नाम को धब्बा लगेगा तथा अन्य साधकों की उन्नति पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। सामान्यता हम आश्रम में महात्माओं तथा सद्गुण-सम्पन्न व्यक्तियों को ही चाहते हैं; किन्तु श्री स्वामी जी के अपने अलग ही विचार हैं तथा अयोग्य एवं अपात्र पर खुले मन से प्रेम उँडेलना उनका स्वभाव है। चमत्कार तो यह है कि अल्प काल में ही हमें ऐसे लोगों में आमूल-चूल परिवर्तन हो गया मिलता है। अयोग्य



व्यक्तियों की आश्रम में उपस्थिति हमारे दृष्टिकोण को भी उदार बनाती है तथा हमारी उन्नति में भी सहायक होती है। हमें हर प्रकार के लोगों और हर प्रकार की परिस्थितियों में अनुकूलन एवं समंजन की शिक्षा मिलती है। हममें दूसरों के केवल सद्गुण ही देखने का स्वभाव बनता है, सबमें एक ही परमात्मा को देखने तथा हर परिस्थिति में मन का सन्तुलन बनाये रखने का स्वभाव विकसित होता है।

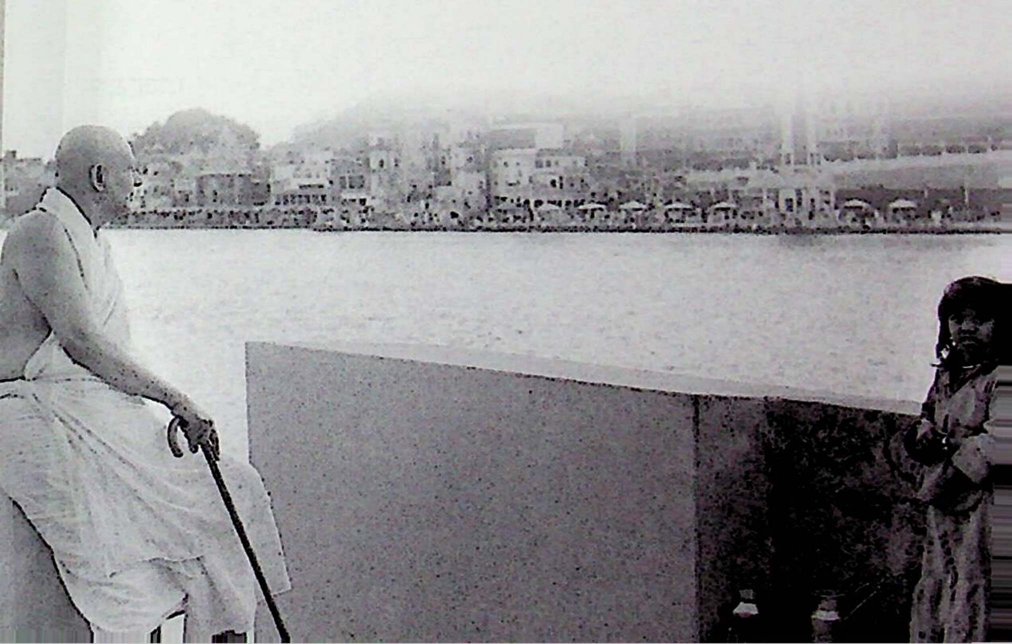
जो आश्रम में रहते थे, उनके ऊपर बिना किसी प्रकार का अनुशासन लादे, उन्हें साधना या सेवा के किसी विधिवत् कठोर नियम में बाँधे बिना ही, उनके जीवन को रहस्यमय ढंग से रूपान्तरित कर देने की, स्वामी जी में चमत्कारी शक्ति है। नकारात्मक प्रकृति के लोगों को परिवर्तित करके, उन्हें कोई भी—उनके अनुकूल ऐसा कार्य अपना लेने में, जो उन्हें उपयोगी बना सके—इस पर अपना सारे-का-सारा समय, प्रयत्न और धन लगा देने की स्वामी जी में आश्चर्यजनक शक्ति एवं धैर्य है। इस प्रकार यद्यपि उनके कार्य प्रारम्भ में सोसायटी के विकास में हानिकारक तथा आश्रम के नाम पर धब्बा लगाने वाले प्रतीत होते, किन्तु बाद में हम देखते कि इससे केवल भला ही हुआ है और कुछ नहीं। साथ ही जिन्हें भी उनके सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला, उनमें असाधारण विकास होता दिखायी दिया।

आदर्श व्यावहारिक उदाहरण

श्री स्वामी शिवानन्द जी जप, प्रार्थना, मन्त्र-लेखन, आसन-प्राणायाम, योग एवं दर्शन इत्यादि विषयों पर लेख लिखने एवं सतत ध्यान तथा साथ ही अपने कठोर आहार-नियमों के पालन और आराम का ध्यान रखते हुए, अपनी दिनचर्या अथक रूप से पूर्ण करते हैं। पहले की ही तरह वह नित्य प्रातः केवल एक-दो घण्टे के लिए भक्तों से मिलने के लिए अपने कुटीर से बाहर निकलते हैं। तब वह अपने बाल-सुलभ ढंग से विनोदपूर्ण वार्तालाप द्वारा भक्तों एवं अतिथियों को आनन्दित करते हुए अपने कार्यालय का दैनिक कार्य भी देखते जाते हैं। नित्य सायंकालीन सत्संग में भी वह दो घण्टे व्यतीत करते हैं। उनका कार्यालय में तथा सत्संग में आगमन एक विशाल उत्सवीय-शोभायात्रा के समान प्रतीत होता है। भक्त जन कुटीर से चलते हुए पुनः वापस कुटीर में लौटने तक उनके साथ-साथ ही रहते

हैं। अब इस आयु में भी वह सारे आश्रम के कार्य-कलापों का मूक रह कर प्रबन्धन करते हुए, अत्यन्त सूक्ष्मतम गहराइयों तक जा कर अपने साथ रहने वाले सभी लोगों के स्वास्थ्य और आध्यात्मिक उन्नति का ध्यान रखते हुए, लोगों और धन-सम्पदा से पूर्णतया विरक्त रह कर, मूक-द्रष्टा के समान सदैव अपनी साधना में लगे रहते हैं। विश्व-भर के समस्त भक्त जनों के हृदय की गहराइयों तक उतर जाने की तथा आशा और प्रसन्नता का संचार करने की उनमें अद्‌भुत क्षमता है।

इस प्रकार श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज किसी पर भी बिना किसी प्रकार के परम्परागत नियम या अनुशासन का बन्धन डाले, विश्व-भर में असंख्य शाखाओं के विस्तृत जाल सहित, ऋषिकेश में इस शक्तिशाली संस्था को स्थापित करके, एक विस्मयजनक आध्यात्मिक जागृति समस्त विश्व में ले आये हैं। श्री स्वामी जी के सम्पर्क में आने वाले लाखों लोगों ने वर्णनातीत आध्यात्मिक लाभ तो प्राप्त किया ही है, चमत्कारी ढंग से भौतिक लाभ और उन्नति भी पायी है। उनके सरल उपदेशों पर चल कर वे सभी आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति, स्पष्ट सूझ-बूझ, उत्तम स्वास्थ्य, सम्पन्नता, शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।



5

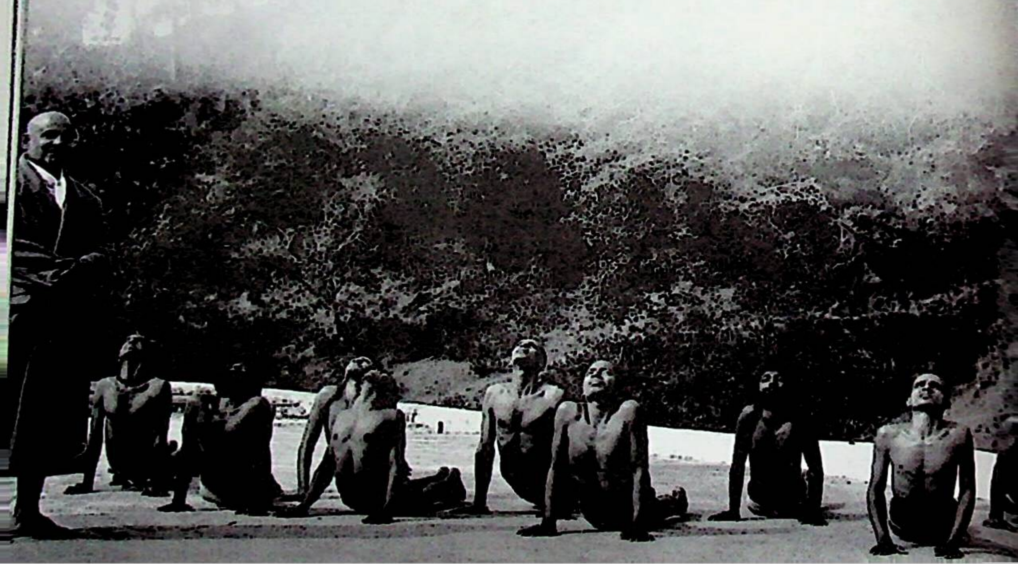
सबके लिए सन्देश

श्री स्वामी शिवानन्द जी का ध्वनिमुद्रित सन्देश

आप यह नश्वर, दुःखकर देह नहीं हो—आप सदैव आनन्दमय, अमर आत्मा हो। इसी सत्य को अनुभव करने के लिए आपने इस सृष्टि में मनुष्य-जन्म लिया है। एक क्षण भी इस सत्य को विस्मृत नहीं होने देना। यह आपके जीवन का सर्वप्रथम कर्तव्य है। अन्य सब कर्तव्य गौण हैं। जीवन के सब कर्तव्य इस प्रकार सम्पन्न करना आवश्यक है कि वे आपको आत्मानुभूति के इस भव्य ध्येय की ओर ले जायें।

इस दुःख और मृत्यु के जगत् में जन्म ले कर आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति हेतु प्रयत्न करो और मुक्त हो जाओ। इस क्लेशकर और नश्वर जगत् में पुनरागमन नहीं करो। आत्म-साक्षात्कार करो। आत्मा में सदैव आनन्दित रहो।

एक ऐसा महान् साम्राज्य है जहाँ न क्षुधा है न तृषा, न दुःख है न शोक, न भय है न मोह, न आय-कर है न व्यय-कर, न कीट हैं न डाकू ही हैं। वह साम्राज्य कहाँ है, क्या यह आप जानते हैं? आपको यह जानने की इच्छा है कि वह कहाँ है? यदि सचमुच ही आप यह जानना चाहते हैं तो आपको इसी क्षण वह बताऊँगा। वह आपके अपने हृदय में ही है।



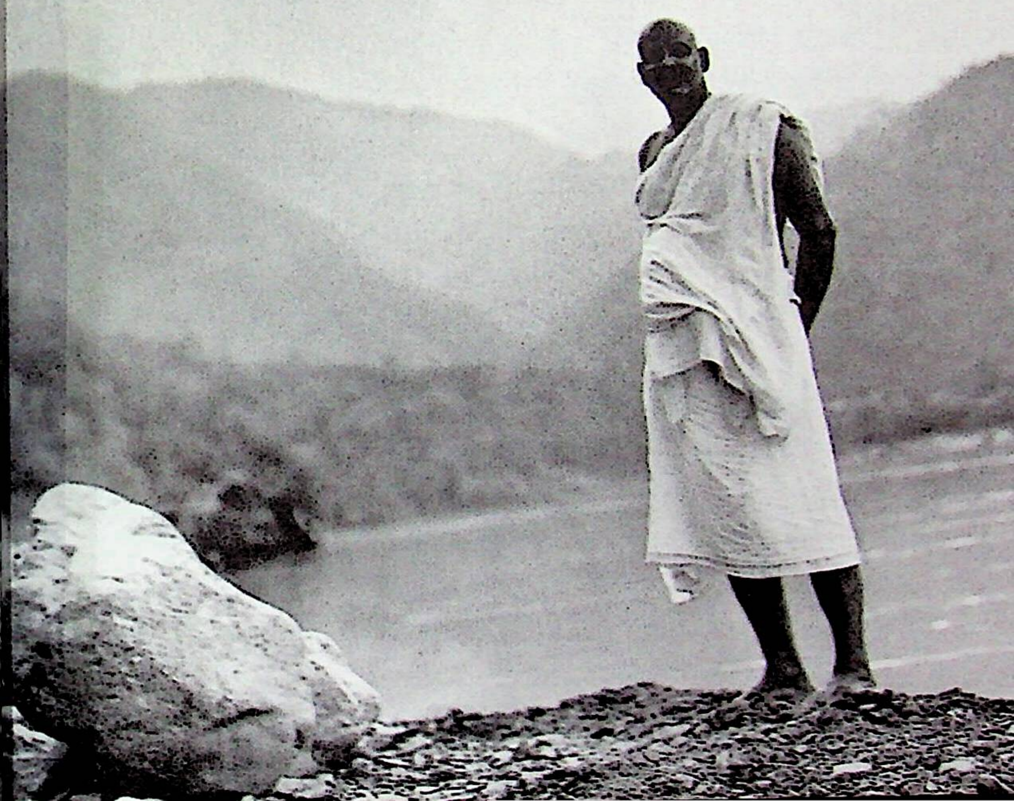
आप वही हैं

सृष्टि के परमात्मा, आपके प्राणों के प्राण, आपकी आत्मा की आत्मा, आपके अस्तित्व का आधार, आपमें ही निवास करते हैं। वास्तव में आप वही हैं, इसकी अनुभूति करो। कितनी भव्य स्थिति है यह! कितना महिमान्वित है यह! कितना रोमांचक है यह! आप तत्काल अनुभव करोगे कि आप, जगत् से, पंचतत्त्वों से संघटित इस देह से भिन्न हों। आपको अनुभूति होगी कि 'मैं एक अमर आत्मा हूँ।'

यह अमर आत्मा सर्वव्यापी सत्य है। यह समस्त सृष्टि का अधिष्ठान है। अतः आप सबसे एकरूप हो। आप सब-कुछ हो, इसे अनुभव करो। तोते के समान वेदान्तिक सूत्रों का दोहराना व्यर्थ है। आपको उन्हें अनुभव करना अनिवार्य है। सत्य आपके जीवन का एक अभिन्न अंग होना चाहिए। आपको इस सत्य को चरितार्थ करना चाहिए।

समन्वय-योग

इसी हेतु मैंने आपको समन्वय-योग दिया है। आपको सबकी सेवा



करनी चाहिए, सबसे प्रेम करना चाहिए और आपके पास जो भी है, उसमें सबको सहभागी बनाना चाहिए। परिशुद्ध बनो, ध्यान करो और आत्म-साक्षात्कार करो। वेदान्तिक सूत्रों को कार्यान्वित किये बिना उन्हें दोहराना व्यर्थ है।

यदि आप वास्तव में सबमें अद्वैत की अनुभूति करते हैं, तो आप जरूरतमन्द व्यक्तियों की सहायता करने शीघ्र ही पहुँच जायेंगे। सेवा करने के लिए आप आतुर हो जाओगे। जहाँ भी दुःख और पीड़ा है, वहाँ आप जायेंगे और पीड़ा का शमन करने का प्रयास करेंगे।

यदि आप अनुभव करते हैं कि आपकी आत्मा ही सबमें निवास करती है, तो आप सबसे प्रेम करेंगे। ईर्ष्या, घृणा और दुर्भाव से मुक्त रहेंगे। आपके हृदय में इस बोध के साथ वैमनस्य कैसे निवास करेगा? आपका हृदय स्फटिक के समान सदैव विमल रहेगा। आप प्रत्येक को सब देना, देना, देना ही चाहेंगे। जो मुक्ति की आकांक्षा करता है, उसका यही लक्षण है।

आपको सीमाबद्ध करने वाली दीवारों को तोड़ डालिए। क्या आप जानते हैं कि वे दीवारें कौन-सी हैं? काम, क्रोध, लोभ और अहंकार। ईंट और सीमेन्ट की बनी दीवारें नहीं, किन्तु अज्ञान एवं मोह की दीवारें। इन दीवारों को चकनाचूर करने के लिए मैं आपको एक अद्भुत हथौड़ा दूँगा। वह है आत्मा का ध्यान : अनुभव करना और बोध करना कि मैं अमर आत्मा हूँ।

साधना

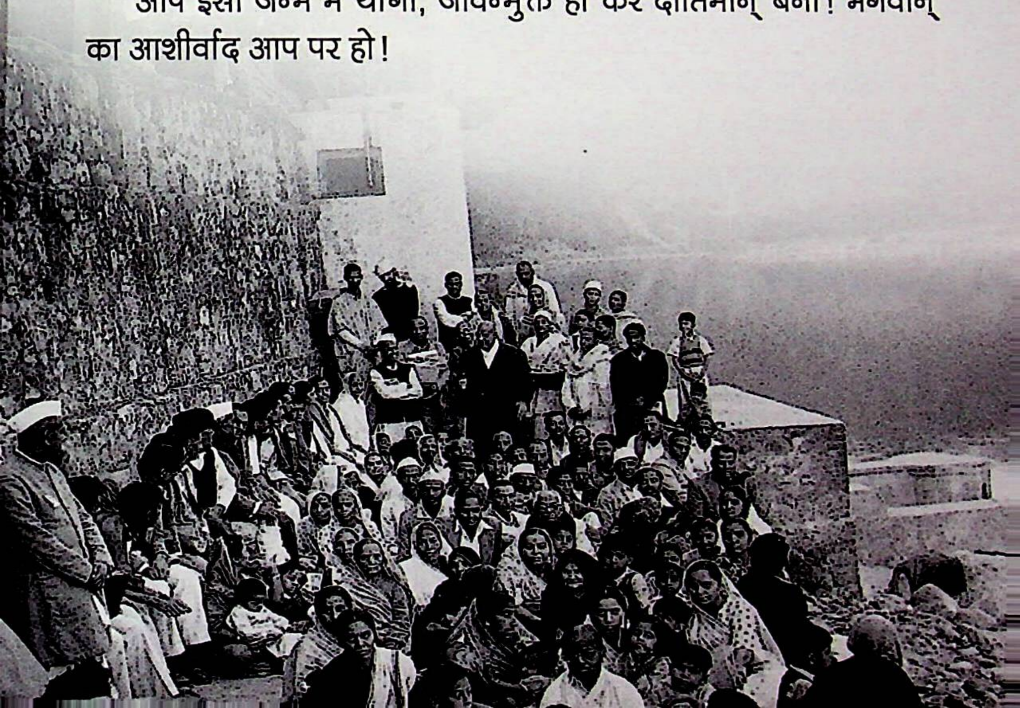
साधना में लग जाओ। आज ही इसका आरम्भ करो। नियमित ध्यान ही आपको आत्मा का यथार्थ साक्षात्कार करायेगा। प्रातः जल्दी उठो और ध्यान करो। जगत् से मन और इन्द्रियों का प्रत्याहार करो। दृष्टि अन्तर्मुख करो। जप करो। प्रार्थना करो। परमात्मा के नाम में महान् आध्यात्मिक सामर्थ्य है। श्रद्धा रखो। अभ्यास करो। आप स्वयं ही इसकी अनुभूति करेंगे। जप करने में नियमित रहो। ध्यान स्वयं ही होगा। परमात्मा स्वयं, आपको उनके चरणकमलों की ओर ले जाने वाले राजमार्ग की ओर निर्दिष्ट करेंगे। नाम-जप में निष्ठा रख कर लगे रहो। इस कलियुग में वह सर्वोच्च

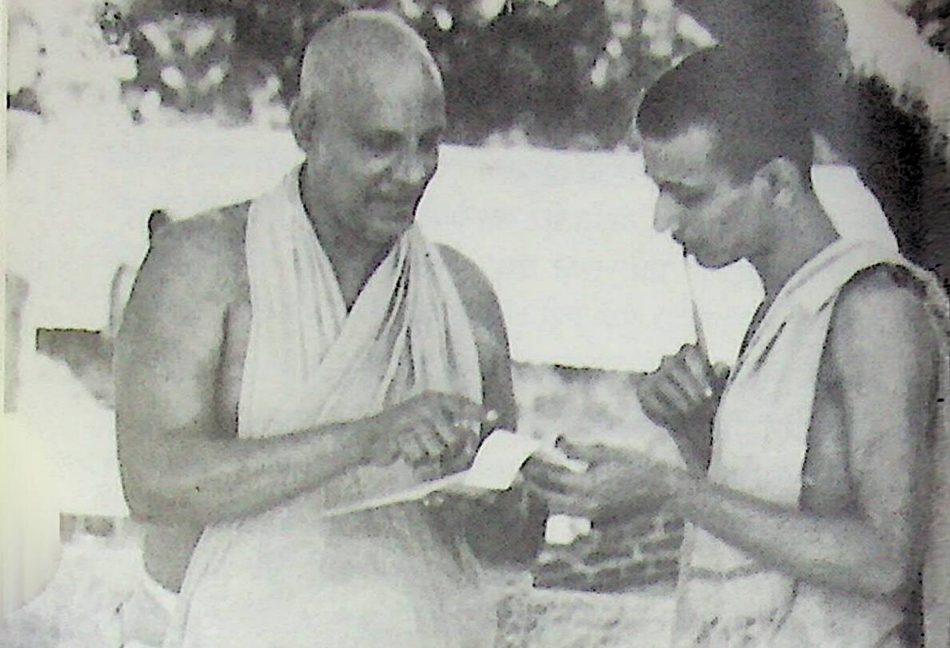
तारक है।

ध्यान में मन यदि इतस्ततः भागता है तो धीरे से लक्ष्य की ओर ले आओ। उसके साथ संघर्ष मत करो। जप करो। शीघ्र ही वह आपके सम्पूर्ण नियन्त्रण में आयेगा। साथ-साथ जगत् की वस्तुओं के प्रति वैराग्य की भावना का विकास करो। सेवा करो। निष्काम सेवा आपके हृदय को निर्मल करेगी और आपका ध्यान अधिक गहरा बनेगा।

सबसे प्रेम करो। वैश्विक प्रेम, राह के सब विघ्न दूर करेगा और परमात्मा के प्रकाश से उसे ज्योतित करेगा। दान करो, दान करो, आपके पास जो भी है वह सबमें बाँटो। हृदय विस्तृत करने, दुर्गुणों का उन्मूलन करने और सद्गुणों का विकास करने का यही सुनिश्चित साधन है। समन्वय-योग का अभ्यास करो। सब प्रकार की साधना थोड़े-थोड़े प्रमाण में करो। जप, ध्यान, कीर्तन, आसन, प्राणायाम, निष्काम सेवा, लिखित जप (मन्त्र-लेखन), शास्त्रों का अध्ययन—ये सब आवश्यक हैं। यह आपको त्वरित आत्मिक विकास और इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जायेगा।

आप इसी जन्म में योगी, जीवन्मुक्त हो कर दीप्तिमान् बनो! भगवान् का आशीर्वाद आप पर हो!





6

दिव्य दूत

परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

आत्मज्ञान ही मानव की नित्यतृप्ति की प्राप्ति हेतु सहायता करता है जो स्वरूप अथवा मोक्ष है। आत्मज्ञान के बिना मोक्षप्राप्ति असम्भव होगी। और वे दिव्य दूत जो हमारा जीवनपथ प्रकाशित करते हैं, उनके बिना आत्मज्ञान की प्राप्ति असम्भव होगी।

आत्मज्ञान का पुनर्जागरण

इन सब दिव्य दूतों के हम सब पर गहन ऋण का आकलन करना असम्भव है जो बार-बार दयनीय असन्तुलन में डूबने वाले जगत् को सन्तुलित और स्वस्थ बनाते हैं। यदा-यदा जगत् के फलक पर से सम्यक् ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान लुप्त हो कर विस्मृति की ओर अभिमुख होता है, तदा-तदा, दिव्य दूत उस ज्ञान को पुनर्जीवित कर, अपनी स्व-अनुभूति की ओजस्विता से उसमें प्राण डालते हैं—उसे पुष्ट करते हैं। यदि व्यास जी ने प्रस्थान-त्रय, अठारह पुराण और भागवत की रचना की है तो वह इसी उद्देश्य

से ही की है। भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति, महान् सन्त-विभूति, विष्णु-अवतार व्यास जी और उनके पश्चात् होने वाले सब महान् ब्रह्मविद्यागुरुओं की आभारी है। श्री अरविन्द महर्षि और हमारे गुरुदेव जैसे दिव्य दूतों का जीवन-ध्येय स्वयं परमात्मा द्वारा सृष्टि के आदि में, चतुर्मुख ब्रह्मा जी के माध्यम से प्रदत्त दिव्य ज्ञान को पुनर्जीवित करना था। ये दिव्य दूत मानव को उसकी इस वास्तविक धरोहर के प्रति जागृत करने का प्रयास करते हैं।

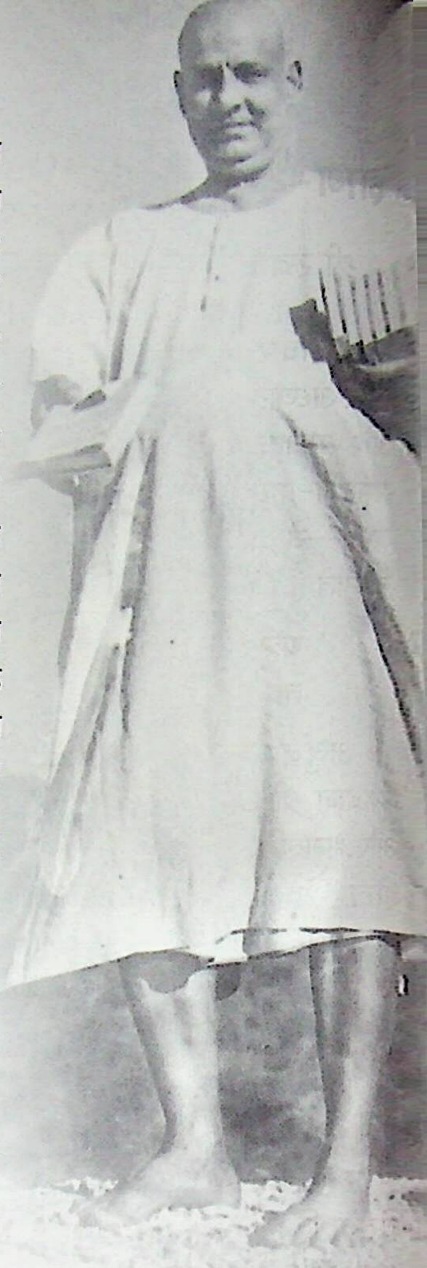
अंशावतार

अवतार-वाद अवतरण का विज्ञान है। अवतार के विविध प्रकार हैं। महान् गुरुजन ईश्वरावतार हैं। वे अंशावतार हैं। परमात्मा अपने दशावतारों के अतिरिक्त प्रायः अंशावतार लेते हैं। ईश्वर के पूर्णावतार उनकी सब सोलह कलाएँ प्रकट करते हैं। उन्हें कलावतार कहा जाता है। शक्ति-अवतार परमात्मा का कोई एक पहलू प्रकट करता है। कभी-कभी परमात्मा किसी विशेष परिस्थिति में साधारण मानव के मुख से बोलते हैं। उसे आवेश-अवतार कहा जाता है। तदुपरान्त, परमात्मा को किसी विशिष्ट अवतार-रूप में, किसी पूजनीय देव-देवी में प्रकट होते अनुभूत किया जाता है जैसे कि श्रीरंगम् के भगवान् रंगनाथ, दक्षिणेश्वर में काली माता, पण्ढरपुर में विठ्ठल भगवान्, उडीपी में कृष्ण भगवान् और भद्राचल में रामचन्द्र भगवान्। ये अर्चावतार हैं। अन्त में महापुरुष—महान् सद्‌गुरु जो परमात्मा के जीवन्त और साक्षात् रूप हैं, उनका वर्गीकरण अंशावतार में किया जाता है।

वे कृपावृष्टि के कार्य करते हैं; किन्तु इन अंशावतारों की प्रभावी और महत्त्वपूर्ण भूमिका, उनका प्रमुख कार्य, समस्त जगत् में आध्यात्मिक ज्ञान-प्रवाह को जीवन्त रखने का है। हमारा, भारतवर्ष की सन्तानों का, सौभाग्य है कि एक भी ऐसी सदी व्यतीत नहीं हुई कि जिसमें इस प्रकार की ईश्वरीय विभूति से हम धन्य और कृपान्वित न हुए हों। उत्तर भारत के विचरते फकीर, महाराष्ट्र के सन्त, बंगाल के भक्त—इनमें से सबने अपने ढंग से, हमारी इस पवित्र भूमि में ज्ञान-प्रवाह सदैव जीवित रखा है।

गुरुदेव हमारे जीवन में न आये होते तो आध्यात्मिक ज्ञान, जिससे हम

आज सम्पन्न हैं, उससे हम वंचित हो जाते। संस्कृत भाषा पर आपका प्रभुत्व भले ही हो, तो भी, प्रस्थान-त्रय में निहित गूढ़ सत्यों—क्षर-अक्षर, पुरुषार्थ आदि क्या हैं—का बोध होना सरल कार्य नहीं है। और जैसा कि आपको विदित है कि गुरुदेव ने प्रत्येक अगम्य सत्य इस प्रकार समझाया है कि साधारण बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति भी उसे सुगमता से समझ सके। इस प्रकार ईश्वर अपना ज्ञान, जिसे हम विस्मृत करते हैं तथा खो देते हैं, उसे उनके दिव्य दूतों द्वारा हमें लौटाते हैं। समस्त दिव्य दूतों ने यह कार्य पूर्व में भी सम्पन्न किया है। सन्त ज्ञानेश्वर ने अमर ज्ञानेश्वरी में गीता का श्रेष्ठ ज्ञान दिया है। पोतना ने तेलुगु भाषा में भागवत रचा है। कंबन द्वारा तमिल भाषा में और सन्त तुलसीदास द्वारा हिन्दी में रामायण की पुनर्रचना हुई। सन्त एकनाथ ने पुनः महाराष्ट्र को भागवतम् दिया। सन्त निश्चलनाथ ने उत्तर भारत को उनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ, 'विचारसागर' दिया है।



हम—साधारण मर्त्य, किस प्रकार इन दिव्य दूतों—जिन्होंने हमें पुनर्शिक्षित करने, हमारे अन्दर दिव्य ज्ञान प्रदीप्त करने के लिए अपने जीवन समर्पित कर दिये—को, हमारी आराधना अर्पित कर सकते हैं? उनकी कृपा-प्राप्ति का एकमात्र और सच्चा मार्ग तो इन ईश्वरीय मानवों द्वारा अपनी दिव्य करुणा से जिस मार्ग की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है, उस पर चलना है।

7

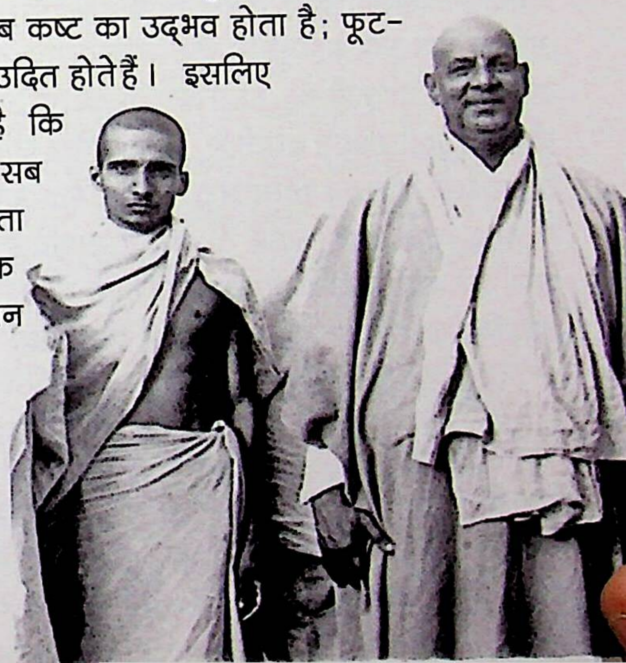
ज्ञान-यज्ञ का महत्त्व

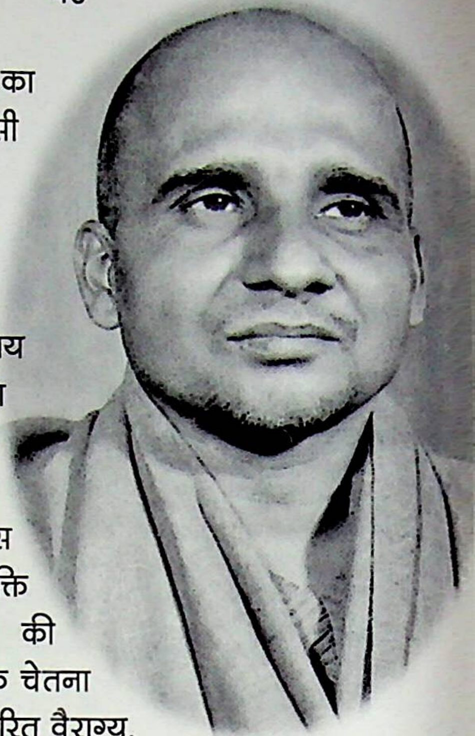
श्री स्वामी कृष्णानन्द जी के प्रवचन का सारांश

सदाचार तथा नीतिशास्त्र के बिना आध्यात्मिकता असम्भव है। नीतिशास्त्र स्वयं अध्यात्मशास्त्र पर आधारित है। उसी प्रकार, जीवन परमात्मा, सदाचार और सम्यक् ज्ञान पर आधारित है। ज्ञान पर आधारित कर्म, प्रभुकृपा का समर्थन-प्राप्त पुरुषार्थ, ईश्वर में स्थित मानव, ब्रह्म में श्रद्धावान् मानव-जाति—ये क्रमशः सफलता की ओर ले जाते हैं। ये सब परम सत्य की ओर ले जाते हैं। गीता के निम्न दिये श्लोक का यह सुन्दर महत्त्व है :

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।। (गीता : १८-७८)

अर्जुन मानव-वर्ग, कर्म और पुरुषार्थ का प्रतिनिधित्व करता है, भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्म, ज्ञान, कृपा का प्रतिनिधित्व करते हैं। जहाँ अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण साथ होते हैं, जहाँ कर्म सम्यक् ज्ञान पर आधारित होता है, वहाँ विजय है। जब यह व्यवस्था विक्षुब्ध होती है, जहाँ कर्म ज्ञान पर आधारित नहीं होता, तब कष्ट का उद्भव होता है; फूट-विच्छेद, पीड़ा और भ्रान्ति उदित होते हैं। इसलिए यह सर्वोच्च महत्त्व का है कि हमारे दैनन्दिन जीवन के सब कर्म सम्यक् ज्ञान में दृढ़ता से स्थित हों; हमारी नैतिक चेतना निरन्तर सम्यक् ज्ञान से प्रदीप्त हो। यही है गीता का उपदेश कि कर्म बुद्धि पर आधारित हो। बुद्ध भगवान् की आध्यात्मिक प्रणाली में





भी पीड़ओं का मूल कारण 'ज्ञान' का अभाव है—यहाँ ज्ञान सत्य के किसी भी अंश या पक्ष का प्रतीक है।

सम्यक् ज्ञान और आध्यात्मिक अनुशासन

सम्यक् ज्ञान से अभिप्राय सांसारिक वस्तुओं की नश्वरता का बोध है। उसमें पार्थिव वस्तुओं के पीछे दौड़ने की निःसारता की स्पष्ट समझ समाविष्ट है। वह इस संसार की वस्तुओं से अनासक्ति सूचित करता है। इस प्रकार की अनासक्ति, ज्ञान में सुस्थिर नैतिक चेतना का आवश्यक अंग है। ज्ञान आधारित वैराग्य, चेतना की सजगता का न तो पूर्वगामी है, न तो अनुगामी है। नैतिक चेतना के उद्भव के साथ-साथ त्याग का उद्भव होता है। त्याग परोपकार तथा स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों की परिसमाप्ति की ओर ले जाता है। त्याग तथा दान अहिंसा, प्रेम और सहानुभूति जैसे सकारात्मक गुणों द्वारा सुदृढ़ बनते हैं। जब पार्थिव वस्तुओं की अनित्यता के कारण उनसे असन्तोष होता है तब योग की आधारशिला बनती है; आध्यात्मिक जीवन की नींव स्थापित होती है। सम्यक् ज्ञान का रचनात्मक आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में आचरण में लाया जाना, 'ज्ञान-यज्ञ' के अर्थ में समाविष्ट होता है। इस 'ज्ञान-यज्ञ' शब्द का प्रथम प्रयोग श्रीमद्भगवद्गीता तथा महाभारत में किया गया है तथा जिसका 'शिवानन्द-साहित्य' में भी बारम्बार प्रयोग किया गया है।

आत्मत्याग और शरणागति

ज्ञान-यज्ञ की अवधारणा क्या है? ज्ञान-यज्ञ का उचित अर्थ केवल मात्र अन्य जनों को ज्ञान प्रदान करना तथा आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार ही नहीं, अपितु सम्यक् ज्ञान—जो कि हमें जीवन में हमारे उचित स्थान का निर्देश करता है—के सिद्धान्तों के साथ सुसंगत हो कर, उस

ज्ञान को अपने जीवन में चरितार्थ करना है। अतः ज्ञान-यज्ञ के अभ्यास हेतु इस मानव-जन्म के द्वारा हमारी प्रारब्ध-निर्मित कौन-सी परिस्थिति है, उसका स्पष्ट बोध हमें होना चाहिए। इसमें मानव-मानव एवं मानव-ईश्वर के साथ हमारे क्या सम्बन्ध हैं, इसका यथार्थ ज्ञान अन्तर्निहित है। ज्ञान-यज्ञ के उचित अभ्यास से हम स्वयं के, समाज के तथा ईश्वर के साथ शान्त रहने में सक्षम बन पायेंगे। ज्ञान-यज्ञ के कार्यक्षेत्र में शारीरिक स्तर पर योगाभ्यास का समावेश है। हम समाज में तब ही मिल-जुल कर शान्ति से रह सकते हैं, जब हम आत्म-त्याग को चरितार्थ कर सकें और हम ईश्वर के साथ तब ही तादात्म्यपूर्वक रह सकते हैं कि जब हम हमारे क्षुद्र अहं को उनके चरण-कमलों में समर्पित कर दें। आत्म-त्याग और आत्म-समर्पण, इस प्रकार, ज्ञान-यज्ञ के महत्त्वपूर्ण संघटक हैं। पूज्य गुरुदेव जो कि इस योग का नित्य अनुसरण करते हैं, वे ज्ञान-यज्ञ के आचरण का सर्वश्रेष्ठ जीवन्त उदाहरण हैं। यदि हम आध्यात्मिक ज्ञान पर आधारित नैतिक सजगता को सुस्थिर रखना चाहते हैं और प्रभु-चरणों में निष्काम कर्म-समर्पण में विकसित होना चाहते हैं तो ज्ञान-यज्ञ का आचरण अनिवार्य और अपरिहार्य है। इसके लिए शारीरिक व्यवहार, मनोवैज्ञानिक विघ्न और मानसिक अशुद्धियों को निर्दयता से दूर करना अत्यावश्यक होगा और उनके स्थान पर परोपकार और प्रेम का क्रमशः विकास करना होगा।

ज्ञान-यज्ञ का आचरण, सदैव, जीवन की हर अवस्था में, हर स्तर पर करना है। ज्ञान-यज्ञ केवल मात्र संन्यासीगण तथा वानप्रस्थीगण जैसे एकान्तवासियों के लिए ही सीमित नहीं है। वह जीवन के हर वर्णाश्रम में, प्रत्येक की आध्यात्मिक उन्नति के लिए है। मात्र, उसमें त्याग अपेक्षित है।

त्याग का अर्थ

और यह त्याग क्या है? नैतिक सजगता का अभिन्न भाग बनने वाली अनासक्ति का जो हम सन्दर्भ देते हैं, यह अनासक्ति क्या है? यह त्याग, कर्म-त्याग नहीं है क्योंकि कर्म किये बिना रहना असम्भव है। हमारे शरीर तथा मन की सम्पूर्ण रचना स्पन्दित, गत्यात्मक और सक्रिय है; अनेक बार ये कर्म अचेतन में होते हैं। जान कर या अनजाने में किये हों, किन्तु

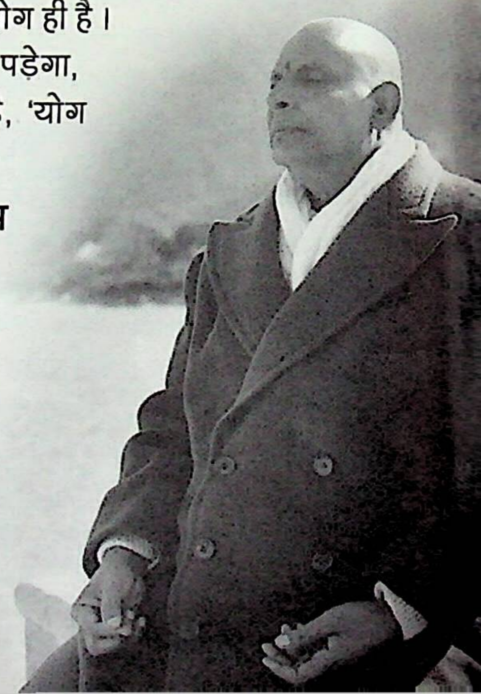
सभी कर्म हमारे अन्दर प्रवाहित ईश्वर की शक्ति से प्रेरित होते हैं। सब कर्म ईश्वरेच्छा का परिणाम हैं न कि हमारे क्षुद्र व्यक्तित्व के प्रयासों का परिणाम—इस सत्य का बोध ही त्याग है। दूसरे शब्दों में, हमसे जो अपेक्षित है वह है—हमारे कर्तृत्वभाव का त्याग और प्रभु की सदैव उपस्थिति का अभ्यास। यह निष्काम कर्मयोग है। कर्मयोगी को सतत अनुभूत करना चाहिए कि व्यक्तिगत शक्ति जैसे किसी तत्त्व का अस्तित्व नहीं है तथा वह तो एकमात्र ईश्वरशक्ति है, जो हममें प्रवाहित हो रही है। हम तो एक विशाल यन्त्र के गतिपालक चक्र हैं, जिसका मुख्य चक्र ईश्वर है। जब ईश्वर कार्यरत होते हैं, सब कर्म होते हैं, सभी कर्मों का सारा श्रेय सदैव उन्हें है। सब मानवीय कर्म केवल मात्र दिव्य चैतन्य का सहज छलकाव है।

योग—अनन्तता में विस्तार

आन्तरिक उद्देश्य, मनोवेग, चेतना, भावना ही सुख या दुःख के जिम्मेदार होते हैं। सही अनुभूति का प्रयास ही योग है। यह परिसीमित मानव का असीम अस्तित्व की ओर सर्वांगी विस्तृतीकरण का प्रयास है। अनन्तता में यह विस्तार कोई भी स्वरूप ग्रहण करे—चाहे वह विश्वशान्ति या तो समाज-सेवा के प्रयास में अथवा देशभक्ति की भावना से किया गया यत्न है—तो भी वह केवल मात्र योग ही है। किन्तु व्यक्ति को सावधान रहना पड़ेगा, क्योंकि उपनिषद् में कहा गया है, 'योग आता है और जाता है।'

विश्वशान्ति की एकमात्र आधारशिला

सम्यक् ज्ञान में निजी व्यक्तित्व का समर्पण, हमारे बोध को पूर्ण करता है और मानव-मानव में, मानव और समाज में, मानव और प्रभु में शान्ति और समन्वय स्थापित करता है। यही



विश्वशान्ति की एकमात्र आधारशिला है। एकाकी जीवन, इस जगत् में, असत्य एवं कपोलकल्पना से अधिक कुछ नहीं है। अतः प्रभावी विश्वशान्ति की प्राप्ति की ओर आधारभूत कदम, ज्ञान के प्रचार-प्रसार में निहित है। भ्रान्त मानव की विचार-पद्धति में क्रान्ति लानी ही चाहिए, क्योंकि इसके द्वारा ही व्यवहार में परिवर्तन सुनिश्चित है। भलाई और बुराई सदा रहेगी, किन्तु इस जगत् में, हम भलाई की भारी प्रमाण में वृद्धि कर सकते हैं। इस हेतु, लोगों के मानस में उच्च आदर्शों को भर देना चाहिए।

यही लक्ष्य है, जो 'शिवानन्द साहित्य' प्राप्त करना चाहता है। जो सफलता उसने अभी तक प्राप्त की है, उसे निर्णित या मूल्यांकन किया जाये तो, बीसवीं सदी के मानव की मूलभूत आवश्यकताओं को हल करने में उसका गौरवपूर्ण और उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ भविष्य है।



8

साहित्य द्वारा विजय

राय साहिब ए. बी. एन. सिन्हा, पटना

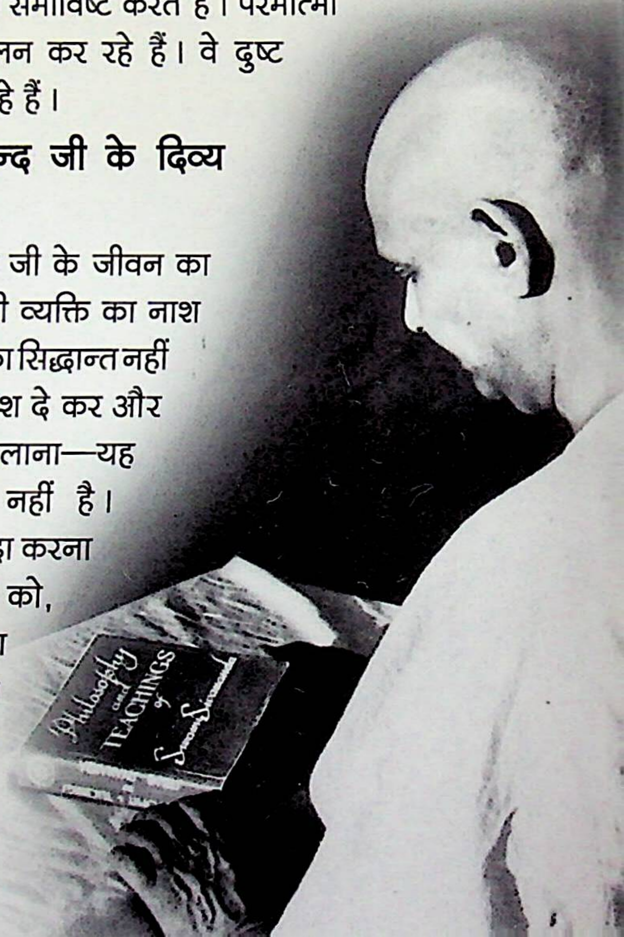
परमात्मा की प्रतिज्ञा की परिपूर्णता

“जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं प्रकट होता हूँ। साधु-पुरुषों का उद्धार करने और दुष्टों का नाश करने तथा धर्म की संस्थापना के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ।”

इन शब्दों में, महर्षि बादरायण परमात्मा से बलात् वचन ले लेते हैं और उसी को महाभारत में समाविष्ट करते हैं। परमात्मा उनके वचन का पालन कर रहे हैं। वे दुष्ट लोगों का नाश कर रहे हैं।

स्वामी शिवानन्द जी के दिव्य जीवन का सन्देश

स्वामी शिवानन्द जी के जीवन का उद्देश्य भिन्न है। किसी व्यक्ति का नाश (खण्डन) करना उनका सिद्धान्त नहीं है। नये धर्म का उपदेश दे कर और उसे अपने नाम से चलाना—यह उनकी महत्त्वाकांक्षा नहीं है। किसी भी धर्म की निन्दा करना और किसी अन्य धर्म को, वही एकमात्र सच्चा धर्म है, ऐसी प्रशस्ति करना—यह वे कदापि नहीं सोचेंगे । जिस प्रकार वे, जीवमात्र में परमात्मा को ही देखते



हैं, उसी प्रकार हर एक धर्म में वे अच्छाई ही देखते हैं। उनका धर्म प्रेम और सेवा है। जितना सम्भव हो, उतना स्वाध्याय करो और परमात्मा का सदैव ध्यान करो। उनके उपदेशों का यही सारांश है। भौतिकवाद का त्याग करो और दिव्य जीवन जियो। यही वह सिद्धान्त है, जिस पर वे बल देते हैं। आपका कुछ भी व्यवसाय हो, उसे एकनिष्ठता से निभाओ। सदन की तरह, मांस-विक्रय चालु रखो, गणिका की तरह अपने निर्धारित कर्म करते रहो। किन्तु परमात्मा के ध्यान के लिए कुछ समय अवश्य निकालो। कोई लोभ, आपके कर्तव्य-पालन से आपको च्युत न करे और कोई भी महत्त्वाकांक्षा आपको दिव्य जीवन के विपरीत आचरण करने को प्रेरित न करे। आपका व्यवसाय कितना भी साधारण क्यों न हो, आप निश्चित रूप से दिव्य जीवन व्यतीत कर सकते हैं यदि आप उसके लिए प्रयासरत हैं। स्वामी शिवानन्द जी का सन्देश यही है।

और इस सन्देश के प्रसार हेतु स्वामी जी ने आश्रम की स्थापना की है; उन्होंने दिव्य जीवन संघ तथा योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी की स्थापना की है। दिव्य जीवन के प्रसार के लिए, विशिष्ट दिव्य ज्ञान का प्रसार अत्यावश्यक है। अतः दिव्य साहित्य का असीम प्रकाशन और इस सुन्दर धरा के कोने-कोने में सर्वत्र उसका वितरण, शिवानन्द जी के सक्रिय उद्देश्य का प्रमुख तत्त्व है। स्वामी जी ने लगभग तीन सौ पुस्तकें और पत्रिकाओं की रचना करके और दिव्य जीवन के आदर्शों के प्रचार हेतु अन्य जनों को भी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए प्रोत्साहित करके मानवता की अद्वितीय सेवा की है।

शिवानन्द-साहित्य की विजय

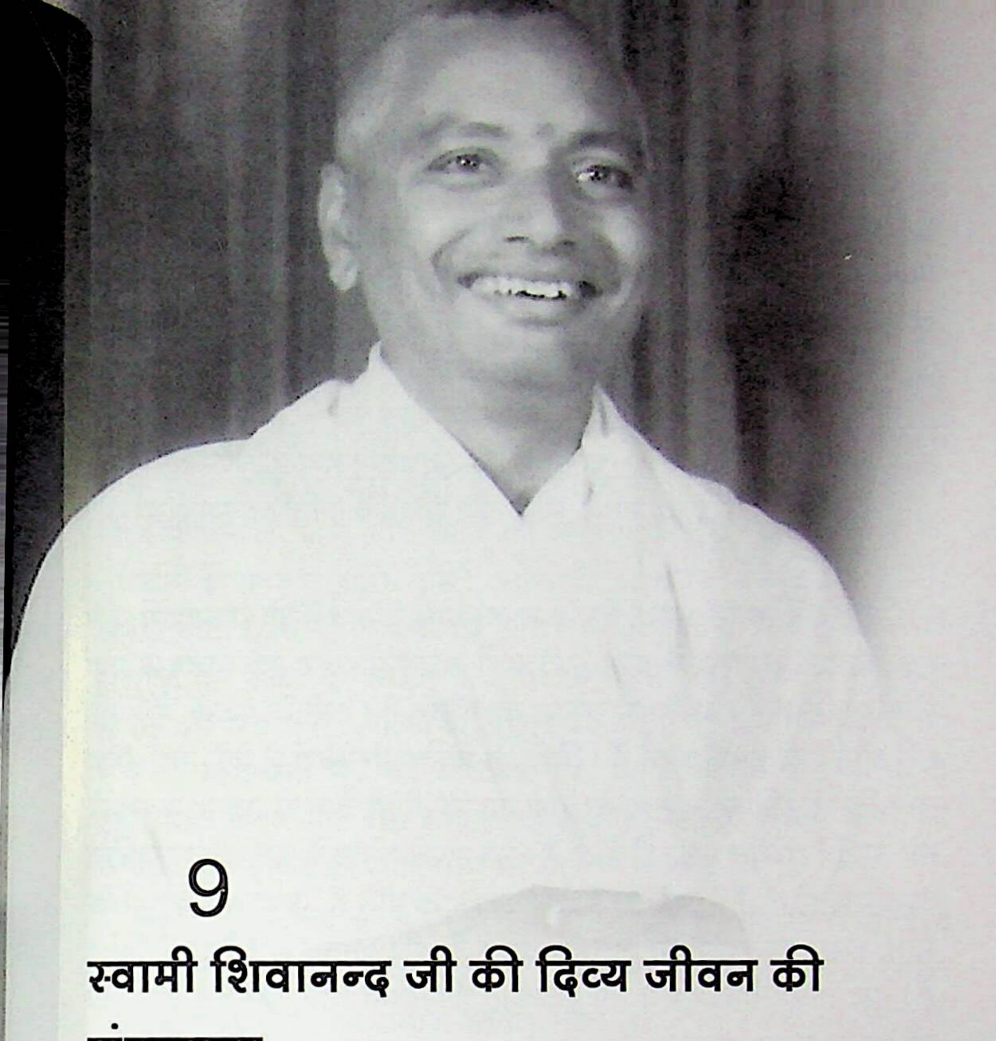
स्वामी शिवानन्द जी की अखिल भारतीय यात्रा के विषय में कहा गया है कि, "वे आये, उन्होंने देखा और उन्होंने जीत लिया।" यह विजय तर्क-वितर्क या वाद-विवाद अथवा किसी सम्प्रदाय या व्यक्ति की निन्दा द्वारा नहीं हुई। वह तो प्रेम की जीत थी—जिसमें, प्रेम से जीते जाने वाले ने गौरव की अनुभूति की। ऐसे हैं शिवानन्द जी! प्रतिदिन, उनके अनुयायियों की सूची लम्बी हो रही है और तर्क-वितर्क से नहीं किन्तु अनुकम्पा, सेवा और दान द्वारा, वे अपने अनुयायियों की संख्या विशाल कर रहे हैं। स्वामी

जी प्रतिदिन विविध प्रकार के दान दे रहे हैं, उनमें प्रमुख हैं – ज्ञान-दान। उनके द्वारा आध्यात्मिक साधकों को वितरित निःशुल्क साहित्य ही केवल प्रति वर्ष लाखों रुपयों के तुल्य है।

स्वामी शिवानन्द जी ने, दुर्गुणों का बल-पूर्वक विनाश करने के लिए नहीं, किन्तु प्रेम और सेवा द्वारा उनका निवारण करने के लिए अवतार लिया है। उनके जीवन-परिवर्तनीय प्रभावी शब्द, कि किस प्रकार दिव्य जीवन जीना है, और अपना यह बोध बारम्बार दे कर, अपना साहित्य लोगों को पहुँचा कर, लोगों के जीवन में आमूल परिवर्तन ला कर उन्हें दिव्य जीवन की राह पर ले आये हैं। इसी कारण, विश्व के धार्मिक साहित्य में, शिवानन्द-साहित्य प्रमुख गिने जाने योग्य और वे नूतन युग के पैगम्बर, प्रत्युत उससे भी अधिक, ईश्वरावतार के रूप में आराधना करने योग्य है।

वे दीर्घायु हों ! शिवानन्द-साहित्य पूर्व से भी अधिक सफलता प्राप्त करे !





9

स्वामी शिवानन्द जी की दिव्य जीवन की संकल्पना

परम पूज्य श्री स्वामी वेंकटेशानन्द जी महाराज

स्वामी शिवानन्द जी का 'दिव्य जीवन' प्राचीन और अर्वाचीन का समन्वय है। इसके संचालक नियमों की दृष्टि से यह प्राचीन और इसके अभिगम तथा व्यवहार की दृष्टि से अर्वाचीन है। जो दर्शन सदियों पर्यन्त परिवारों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में सुप्त पड़ा था, उसे स्वामी शिवानन्द जी कर्मशालाओं तथा अन्य कार्यक्षेत्रों में ले कर आये हैं।

जीवन उसके उद्भव, सार रूप में और अर्थ में दिव्य है। तत्त्वज्ञान से रहित जीवन अपना उद्देश्य और आकर्षकता खो देता है। जब निष्क्रिय जीव

जाग्रत होने का प्रयास करता है तथा एक आदर्श-सिद्धि के लिए यत्न करता है, तब वह एक सक्रिय, जाग्रत मानव बनता है। मानव पशु से इसलिए भिन्न है कि वह आदर्श-प्राप्ति हेतु जीवन व्यतीत कर सकता है और उसे आदर्श-प्राप्ति हेतु जीना आवश्यक भी है। केवल मानव में ही इस प्रकार की समझ है कि जीवन का कोई उद्देश्य और अर्थ है। जो व्यक्ति केवल स्वाद हेतु आहार लेता है, वह पशु से अधिक कुछ नहीं है, उसका अस्तित्व तो है किन्तु यथार्थ में वह जी नहीं रहा है। अतः स्वामी शिवानन्द जी—उनके ही शब्दों में अभिव्यक्त किया जाये तो—चाहते हैं कि सर्वप्रथम, हमारे अन्दर यह समझ और बोध होने चाहिए कि खाने, पीने और सोने के अतिरिक्त हमारे सम्मुख एक उच्चतर ध्येय है।

जीवन में हमारा ध्येय, इस बात का बोध करना है कि वास्तव में, हम एक विनाशी आवरण में बन्द अविनाशी आत्मा हैं। हर एक मानव में एक दिव्य स्फुलिंग है। वह हमारे जीवन का जीवन है। उसी के प्रकाश में हमारे मन और बुद्धि कार्य करते हैं। विश्व के विविध पैगम्बरों ने उसे भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं, किन्तु गुलाब के पुष्प का किसी भी नाम से उल्लेख करने से भी, उसकी सुगन्ध मधुर ही होती है। हम अपने भीतर के इस दिव्य स्फुलिंग के कारण ही जीते हैं, सोचते हैं, संवेदना युक्त होते हैं, जगत् के पदार्थों के साथ, हमारे सम्बन्धों को अनुभूत करते हैं और विविध गतिविधियाँ करते हैं। इस सार्वभौमिक सत्य की स्वीकृति ही स्वामी शिवानन्द जी के दिव्य जीवन का प्रथम सिद्धान्त है।

इस सिद्धान्त की बौद्धिक समझ से हम अपनी यात्रा का प्रारम्भ करते हैं, किन्तु उसकी अपरोक्ष अनुभूति अथवा वास्तविक साक्षात्कार करना—यही हमारा अन्तिम ध्येय है। यह दिव्य स्फुलिंग हमारी वास्तविकता होने से और हमारी सब क्षमताएँ उसमें ही अस्तित्व रखने और विकसित होने से, स्वामी शिवानन्द जी हमें समग्र परिपूर्णता प्राप्ति हेतु प्रबोधित करते हैं। दिव्य जीवन या आध्यात्मिक जीवन अथवा योग को हमारे व्यक्तित्व के किसी भी एक पहलू को अन्य किसी भी पहलू के मूल्य पर उन्नत नहीं करना चाहिए। इस आन्तरिक आध्यात्मिक ऊर्ध्वीकरण द्वारा, हमारी भावनाओं का ऊर्ध्वीकरण, हमारे विचारों का शुद्धिकरण, इच्छाशक्ति का दृढ़ीकरण,

बुद्धि का प्रदीपन, हमारे मन का नियन्त्रण और इन्द्रियों का संयम भी होना ही चाहिए। हमारे विचार ऊर्ध्वगामी, हमारी वाणी श्रेष्ठ और दूसरों को उन्नत करने वाली तथा कर्म निष्काम और लोकोपकारी होने ही चाहिए। स्वामी शिवानन्द जी की दिव्य जीवन की संकल्पना का यह द्वितीय सिद्धान्त है।

समाज की कल्याण-वृद्धि हेतु **भला करो**, यह सूत्र पर्याप्त है। लोकोपकारी का व्यक्तिगत जीवन कैसा भी हो और आन्तरिक उद्देश्य कोई भी हो, वह यदि हमारा भला करते हैं तो हम उसका आदर करते हैं। किन्तु, साथ-साथ, यदि वह, **भले बनो**, इस सूत्रपालन के लिए प्रयत्न न करे, तो मिथ्याभिमान के, नाम और कीर्ति की लालसा के तथा विविध प्रकार की तृष्णाओं के अपतृण (घास-फूस), आत्मा के आन्तरिक अभ्युदय में, गम्भीर रूप से बाधा डालते हैं। माल्यार्पण और स्तुति, व्यक्ति के मिथ्याभिमान को सन्तुष्ट कर सकते हैं, किन्तु वे क्षुधा-शमन नहीं कर सकते—मात्र अन्न ही वह कर सकता है। आत्मा के अभ्युदय हेतु व्यक्ति के समग्र आन्तरिक स्वभाव, **भला बनो** सूत्र को चरितार्थ करे, यह आवश्यक है। व्यक्ति के आन्तरिक जीवन और बाह्य व्यवहार का एकीकरण—यह स्वामी शिवानन्द जी के दिव्य जीवन की संकल्पना का तृतीय सिद्धान्त है।

समाज-कल्याण व्यक्तिगत मोक्ष के विरुद्ध नहीं है। वास्तव में, ये दिव्य जीवन रूपी सिक्के के दो पहलू हैं। जब मानवता के हितकारियों ने समाज से मुख मोड़ लिये, तब समाज पतवार रहित जहाज के समान नास्तिकता, भौतिकवाद और विषयासक्ति की चट्टानों की ओर बढ़ने लगा। स्वामी शिवानन्द जी बल दे कर कहते हैं कि संसार हमारे बाहर नहीं, अपितु हमारे भीतर ही है। व्यक्ति को संसार में रहना चाहिए, किन्तु सांसारिक हो कर नहीं। स्वामी शिवानन्द जी द्वारा प्रतिपादित दिव्य जीवन का यह चतुर्थ सिद्धान्त है।

समाज व्यक्ति की आत्मा का प्रशिक्षण-क्षेत्र है। सामाजिक सम्पर्क दोहरे उद्देश्यों को पूर्ण करते हैं। वे हमें सद्गुणों के विकास हेतु समर्थ बनाते हैं। हमारे चारों ओर के, विश्व-भर के दुःख हमें अन्य लोगों की सेवा के अवसर देते हैं। साथ-साथ, हमारे सामाजिक सम्बन्ध हमारी आन्तरिक आध्यात्मिक योग्यता की परीक्षा और मूल्यांकन भी करते हैं। झूठे आत्म-

सन्तोष और आत्म-भ्रान्ति से हमारी सुरक्षा करते हैं। प्रथम एकीकरण जो स्वामी शिवानन्द जी कार्यान्वित करते हैं, वह है—मानव और विश्व का एकीकरण। मानव समाज का एक भाग है। वह समाज का एक अंग है। हमारे शरीर का कोई एक अंग विभक्त होता है तो क्या होता है? वह अंग विघटित होता है और शरीर को उस हानि से पीड़ा होती है। इसी प्रकार, यदि आप और मैं समाज से सम्पर्क हीन होते हैं, यदि हम अपने कर्तव्यों से विमुख होते हैं तो हमारे व्यक्तित्व का विघटन होता है और समाज की भी हानि होती है। अतः स्वामी शिवानन्द जी के उपदेश हमें प्रेरणा देते हैं कि "सबकी सेवा करो। सबसे प्रेम करो। सबको दान दो अथवा हमारे पास जो भी है, उसे सबके साथ बाँट लो।" यह उपदेश उनके **भला करो** उपदेश का विस्तरण है। इसके द्वारा हम मानव और विश्व का एकीकरण प्राप्त करते हैं।

द्वितीय एकीकरण मानव की बुद्धि, हृदय और हाथों का है। स्वामी शिवानन्द जी, मुमुक्षु के एकांगी विकास को प्रोत्साहन नहीं देते हैं। अज्ञानान्धकार के किसी भी तत्त्व को, हमारे व्यक्तित्व में कोई स्थान

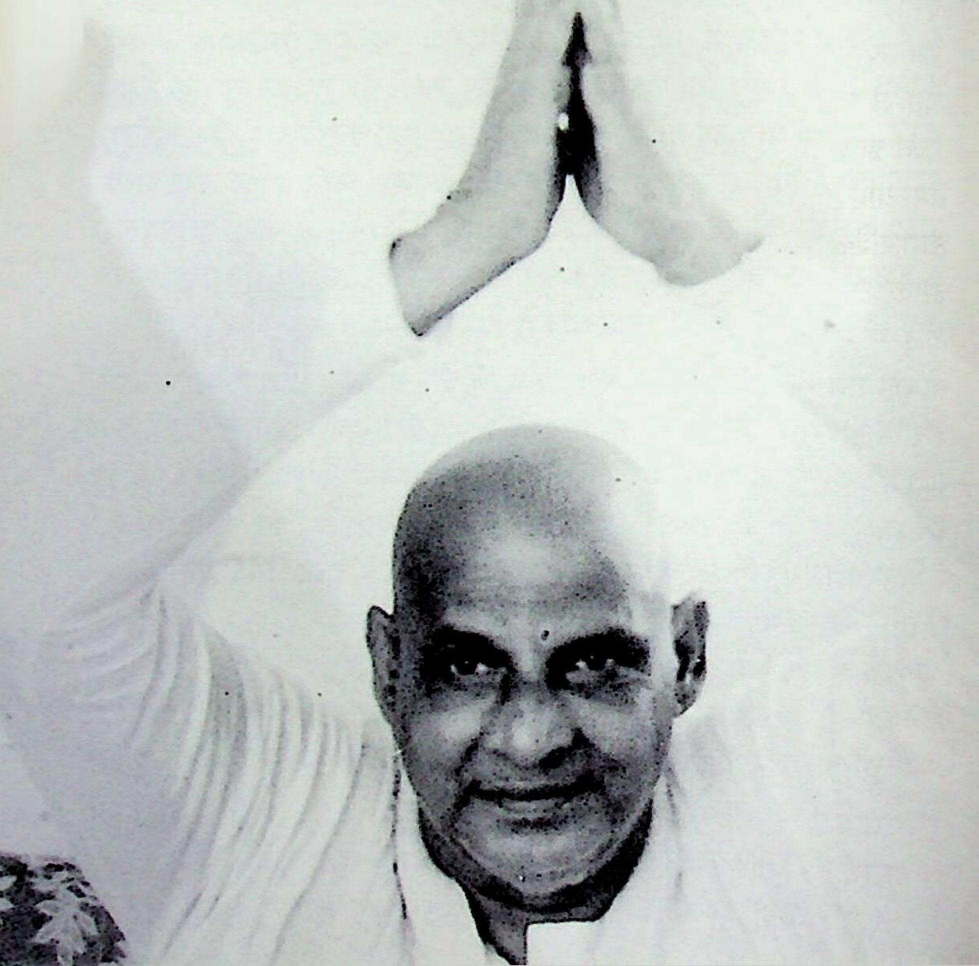


मिलना नहीं चाहिए। कर्तव्य-कर्म और पूजा, स्वाध्याय और सेवा, पवित्रता और सांसारिक कर्तव्य—सब साथ-साथ सम्पन्न होने चाहिए। व्यक्ति को अपने हृदय को परमात्मा के निवास-स्थान में रूपान्तरित करना चाहिए। हृदय विशुद्ध और प्रभुप्रेमी होना चाहिए। मानव-बुद्धि दिव्य प्रकाश अथवा पराज्ञान के सर्वोच्च प्रकाश से आलोकित होनी चाहिए। तब ही, वह, जिस अज्ञानान्धकार के कारण, स्वयं का एक भिन्न तथा पृथक् अस्तित्व समझता है और उसके उस अस्तित्व का आधार दूसरों को उनकी आवश्यकताओं से वंचित रखने की क्षमता को समझता है, उस अज्ञान का नाश होगा। ज्ञान के दिव्य प्रकाश में उसे दिव्य दर्शन होगा। उस नूतन दर्शन में वह समग्र सृष्टि को, केवल एकमात्र वैश्विक आत्मा के रूप में देखेगा। विशुद्ध हृदय और आलोकित बुद्धि का जो प्रभाव, मानव के हाथों पर होगा वह प्रकट ही है। उसके हृदय में प्रभु का प्रेम है और एक नये बोध के प्रकाश में वह देखता है कि ईश्वर सर्वव्यापी है। अतः वह सबसे प्रेम करेगा, सबकी सेवा करेगा, उसके पास जो भी है उसमें सबको सहभागी बनायेगा। और अधिक महत्त्वपूर्ण है कि वह उसका अभिमान नहीं करेगा। नया दर्शन और नयी दृष्टि 'भलाई' को उसका सहज स्वभाव बनायेंगे। उसमें कोई कृत्रिमता, दम्भ अथवा कूटनीति नहीं होगी। भलाई स्वाभाविक, सहज और प्रचुर मात्रा में होगी। अब पात्र अगली अवस्था हेतु तैयार हो जाता है।

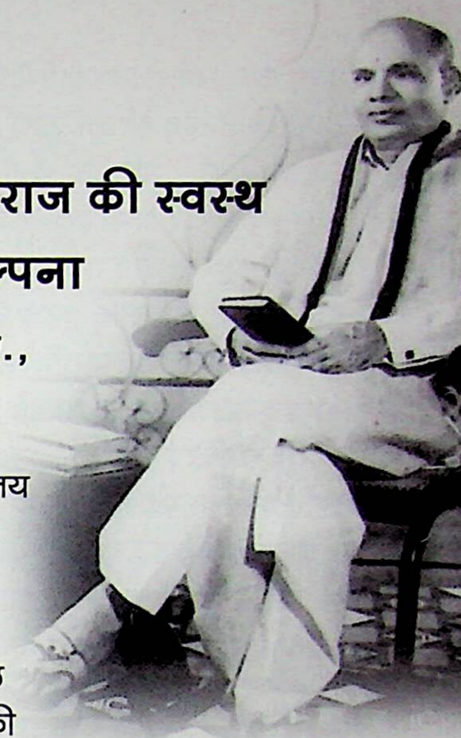
तृतीय एकीकरण मानव और ईश्वर का है। भलाई देवत्व की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। सात्त्विकता मानव को अपने आदर्श-सिद्धि के निकटतर होने का सामर्थ्य देती हैं। बुद्धि से उसने जो ग्रहण किया, अब वह उसके अन्तर्चक्षु के समक्ष प्रकट होता है। वह ईश्वर का स्फुलिंग स्वयं में और जगत् के सब लोगों में देखता है। उत्कट निष्काम प्रेम तथा उदारता सहित मानव-जाति की निःस्वार्थ सेवा, उसके हृदय में छिपे परम तत्त्व के आवरणरूप बनी हुई तमोगुणरूप दुर्वृत्तियाँ दूर करती है। भूतकाल के गलत कर्मों के सुप्त संस्कारों से अभी निपटना है। वे प्राणायाम, दिव्य नाम जप, शास्त्रों के स्वाध्याय और सन्तों के संग जैसी आन्तरिक शुद्धिकरण की विविध साधनाओं के अभ्यास से नष्ट होते हैं। अब ध्येय सुस्पष्ट होता है। आवरण अत्यन्त महीन और लगभग पारदर्शक बनता है। दो ही पदक्रमों में मानव ध्येयसिद्धि प्राप्त करता है। वे दो पदक्रम हैं—ध्यान और

साक्षात्कार। मन की किरणें एकाग्र कर, वह उन्हें अन्तर्मुख बनाता है और भीतर के दिव्य स्फुलिंग पर केन्द्रित करता है। आवरण अब पूर्णतया नष्ट होता है। सत्य का साक्षात्कार होता है। यह एक अनिर्वचनीय, अपरोक्ष और तत्काल अनुभूति है। मानव इस सत्य का साक्षात्कार करता है कि वह स्वयं ही ईश्वर है और सदैव रहा है।

यही लक्ष्य है। जिसने उसे प्राप्त किया, वह मानवता का सर्वश्रेष्ठ हितकारी है, क्योंकि समस्त मानव-जाति के लिए वह प्रेरणा-स्रोत है। वह समाज-रूपी जहाज को भलाई के सुरक्षित आश्रयपर्यन्त पथदर्शन करने वाला दीपस्तम्भ है। स्वामी शिवानन्द जी का दिव्य जीवन मानव की मोक्षप्राप्ति तथा सम्पूर्ण मानवता की समृद्धि सुनिश्चित करता है।



10



स्वामी शिवानन्द जी महाराज की स्वस्थ विश्व-व्यवस्था की संकल्पना

श्री एस. सुब्बा राव, एम. ए., गीता आचार्य, हैदराबाद

स्वामी शिवानन्द जी ने हिमालय की उत्तुंग ऊँचाई से, विश्व की चारों दिशाओं में घोषित किया है कि केवल मात्र उपनिषदों (सामान्यतः वेदान्त के नाम से जो पहचाने जाते हैं) का श्रेष्ठ दिव्य ज्ञान ही व्यक्ति की और विश्व की समस्याएँ हल कर सकता है। ज्ञान जीवन की आधारशिला है। विकास की प्रक्रिया चेतना के क्रमशः प्रकटीकरण में और उसके अनुरूप शरीर (जो कि चेतना का वाहक है) के विकास में है। जब कोई भी जीव मानव-स्तर पर पहुँचता है, वह कम से कम, थोड़े प्रमाण में तो यह समझने हेतु समर्थ होता है कि जीवन का आरम्भ कहाँ से, क्यों और कैसे हुआ! यही वह आवश्यक ज्ञान है जो कि उसे (उचित रूप से कहा जाये तो) मानव बनाता है और दिव्यता के पद पर्यन्त उन्नत करता है। जब व्यक्ति इस ज्ञान से ओत-प्रोत होता है, तब उसे जीवन की एकता का बोध होता है। नैतिकता अन्य मानव-बन्धुओं के साथ उसके नाते-व्यवहार सुनिश्चित करती है और इस प्रकार वह सामाजिक जीवन की नींव है। आध्यात्मिकता का अर्थ मानव और उसके सर्जनहार के सम्बन्ध से है और आध्यात्मिकता ही जीवन तथा जीवन की अन्य वस्तुओं के मूल्य सुनिश्चित करती है। अतः यह वैयक्तिक और सामाजिक व्यवहार, दोनों का आधार है।

स्वामी शिवानन्द जी के 'आनन्द-कुटीर' से आध्यात्मिक ज्ञान-गंगा के असंख्य झरने प्रवाहित हो रहे हैं। वे विश्व की चारों दिशाओं के

दूर-सुदूर के कोनों में आध्यात्मिक ज्ञान की बाढ़ ला कर उन्हें उर्वर बनाते हैं। स्वामी शिवानन्द जी का कार्य एक सर्वोच्च सद्गुरु के रूप में अद्वितीय है। वे पुरुष-वर्ग, स्त्री-वर्ग और बालकों हेतु, उन सबके जाति-भेद, वर्ण-भेद और सम्प्रदाय-भेद बिना, सुलभ हैं। उनका प्रेम असीम और समष्टि पर्यन्त है। उनके उपदेश (निजी उदाहरण एवं आचरण के कारण) सरल हैं और सीधे हृदय पर्यन्त पहुँचते है। वे परिपत्रों, पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के निःशुल्क वितरण द्वारा, विश्व-भर के अगणित मानवों के जीवन-परिवर्तन में सक्षम रहे हैं। वे एक नूतनतर और अधिक उदात्त विश्व-व्यवस्था के लिए ऐसी भूमिका तैयार कर रहे हैं जहाँ पुरुष-वर्ग और स्त्री-वर्ग समानता की भूमिका पर मिलेंगे तथा सहयोग और सद्भावना से रहेंगे, जिससे वे सबको चाहने वाले अपने जगत्-पिता की सुयोग्य सन्तान बनें। स्वामी शिवानन्द जी ने, इस प्रकार, विश्व-समाज की एक सुन्दर, शान्त और समृद्ध स्थिति की नींव डाली है और उसका मार्ग प्रशस्त किया है। अतः उनका विश्व-शान्ति के अग्रदूत के रूप में अभिनन्दन करना चाहिए।



11

विश्व की आवश्यकता क्या है ?

श्री ए. एम. एस. पार्थसारथी, कोचीन

हमारी प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति—जो भौतिकवाद की भस्म के नीचे दबी हुई है—का नवीकरण करना वर्तमान समय की अत्यावश्यकता है। उसे दीप्त और पुनः प्रदीप्त करना आवश्यक है जिससे कि वह अनन्त और अमिट ज्योति प्रत्येक के द्वारा दर्शनीय हो। आज आध्यात्मिक भव्यता के सर्वोच्च शिखर पर महान् ओजस्वी योगी, ईश्वर के जीवन्त अवतार, सीमित रूप में असीम श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी सर्वप्रथम हैं। भूमण्डल के हर एक भाग में अपनी शाखाओं सहित, उनका दिव्य जीवन संघ सार्वत्रिक प्रेम, भलाई और संसार के सभी जीवों के प्रति दया और सहानुभूति का सन्देश सर्वत्र प्रसारित करता है। स्वामी शिवानन्द जी का साहित्य, अन्वेषक हृदयों पर गहरा प्रभाव डालता है तथा प्रेरणा का स्रोत है; उनके पत्र प्राप्तकर्ता को दिव्य आनन्दातिरेक की अवस्था में पहुँचा देते हैं।



ऐसा कहा गया है कि, अल्पमात्र भी आचरण, विशाल ज्ञान-प्राप्ति से बढ़ कर है। हमारे गुरुदेव ने सदैव इस बात पर बल दिया है कि विश्व-परिवर्तन के पूर्व आत्म-परिवर्तन होना चाहिए। "अपने भीतर झाँकें" वे कहते हैं। यदि

हम ऐसा करेंगे, तो हमारी आत्मा स्वयं निश्चित ही उस दिव्य चेतना की ओर पथ-दर्शन करती है और हमें उन्नत करती है जहाँ अस्तित्व की सब स्थितियों की समग्रता का बोध है। उस स्थितिपर्यन्त हर एक को उन्नत होना चाहिए, जिससे हम सब विश्व-बन्धुत्व के सच्चे बन्धन में बँधे, शान्ति और समृद्धि में रह सकें। यह एक स्वप्न नहीं है और एक पूर्ण वास्तविकता हो सकती है, यदि हम हमारे महान् सद्गुरु स्वामी शिवानन्द जी के थोड़े से भी ज्ञानोपदेशों का पालन करें।

हम उन्हें—हमारे भगवान् को—पूर्ण नम्रता और आदरपूर्वक नतमस्तक होते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे हमें प्रकाश की ओर ले जायें!



12

पूज्य गुरुदेव का दिव्य त्रिशूल

डा. कुट्टी माता जी



परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के सान्निध्य की समयावधि में मैंने जो शिक्षा पायी, उसमें से कुछ मैं आपके समक्ष प्रस्तुत करूँगी। उस समय पूज्य गुरुदेव ने कदापि तत्त्वमीमांसायुक्त प्रवचन नहीं दिये। उन्होंने हमें कदापि निर्देश नहीं दिये; बल्कि उनके चरणों में बैठ कर, लोगों के साथ उनका वार्तालाप श्रवण करके तथा परिस्थितियों और लोगों के साथ उनके व्यवहार का निरीक्षण करके हमने बोध प्राप्त किया। वे चैतन्य की अति उच्चावस्था में कार्यरत थे। मुझ जैसे लोगों का उस स्तर पर पहुँचना असम्भव था। इसलिए उनके विशाल ज्ञानोदधि से मैं केवल मात्र अंजलिभर ग्रहण कर सकी। वह अल्प प्राप्ति मैं आपके समक्ष रखूँगी।

पूज्य गुरुदेव के इस धाम में आश्रय लेने से हमें स्वयं को अति सौभाग्यशाली समझना चाहिए। उन्होंने यह महान् आध्यात्मिक विरासत

हमें दी तथा उसे देने में कोई शर्त नहीं रखी। आयु, लिंग तथा हमारी ग्रहण शक्ति के स्तर जो भी हों, किन्तु सबके लिए वह उपलब्ध है। उन्होंने रात-दिन परिश्रम किया तथा उनके सारे प्रयत्न धर्म तथा आध्यात्मिकता के क्षेत्र में हमारे विपरीत दर्शन को सम्यक् बनाने के लिए और हमारे सीमित मन को विस्तृत करने के लिए ही थे। वे इतने विशाल दृष्टिकोण सम्पन्न व्यक्ति थे! हमारे लिए वे एक महान् आदर्श थे।

आध्यात्मिकता तथा धर्म के दो पहलुओं पर उन्होंने सदा बल दिया। प्रथम पहलू यह था कि प्रत्येक मानव में दिव्य बनने की अन्तर्निहित क्षमता है। उस दिव्यता को प्रकट करने के लिए हमारे प्रत्येक विचार, शब्द तथा कार्य के पीछे हमारे मन में यह विचार सतत होना चाहिए कि हमारा व्यक्तित्व दिव्य है। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि यदि इस दिव्यता को हमें प्रकट करना है तो हमारा प्रयत्न अन्तरतम से होना चाहिए। जब तक हम आन्तरिक आध्यात्मिक साधना नहीं करेंगे, तब तक हमारे सब प्रयासों के बाद भी हमारी अन्तर्निहित दिव्यता प्रकट नहीं होगी। हमारे सब प्रयत्न आन्तरिक तथा बाह्य—दोनों प्रकार के होने चाहिए। यदि दृढ़ता से दीर्घ समय तक निरन्तर हम यह अभ्यास रखेंगे तो हमारा प्रत्येक कर्म हमारे लक्ष्य—ईश्वर-साक्षात्कार की ओर बढ़ने वाला कदम होगा। पूज्य गुरुदेव ने इस बात पर बल दिया है कि जीवन का एकमात्र ध्येय, भगवत् साक्षात्कार है।

सर्वप्रथम है—आन्तरिक शुद्धि। उसकी प्राप्ति के लिए हमें अविरत प्रयत्न तथा कुछ सीमा तक अन्तर्निरीक्षण और स्वविश्लेषण करने आवश्यक हैं। दिव्यता के दर्शन में कौन से विघ्न हैं? वे विघ्न केवल गुरु द्वारा ही दूर किये जा सकते हैं। किन्तु प्रयत्न तो हमारा ही होना चाहिए। सर्व व्यवहारों के लिए हमें कुछ सैद्धान्तिक ज्ञान होना चाहिए। सैद्धान्तिक ज्ञान हमें शास्त्रों से प्राप्त होता है। श्री कृष्ण भगवान् कहते हैं :

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में स्थित है। (गीता : १८-६१)

तथा '**मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।**

हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम (कारण) नहीं है।

(गीता : ७-७)

अर्थात् ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई अस्तित्व नहीं है। हम जो भी कार्य करें, मानव तथा ईश्वर के इस घनिष्ठ सम्बन्ध की विस्मृति किये बिना करें कि हम ईश्वर के साथ व्यवहार कर रहे हैं।

साधना हमारे पूजाकक्ष तथा साधना-सप्ताह तक सीमित नहीं है। हमारा समस्त जीवन साधना है। जब हमारा प्रत्येक कार्य निर्मल हो तथा मन, हृदय और बुद्धि के सकारात्मक सद्गुणों पर आधारित हो, तब वह साधना होती है। इस संसार में जीवन यापन करते हुए हमें अनेक कार्य करने होते हैं, हमारी अनेक प्रतिबद्धताएँ, उत्तरदायित्व होते हैं। इस बाह्य जगत् एवं अपने आन्तरिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने हेतु हमें उपाय खोजना चाहिए। इस सन्दर्भ में पूज्य गुरुदेव ने हमें 'सेवा, प्रेम, दान' इन उपदेशों से महानतम पाठ सिखाया है।

सेवा किये बिना हम जी नहीं सकते। एक या दूसरे प्रकार का कार्य करना ही है—वह स्वयं या अन्य के लिए भी उपयोगी हो सकता है। पूज्य गुरुदेव के उपदेश में यह अति महत्त्वपूर्ण तथा प्रथम चरण है। 'प्रेम' सबमें अन्तर्जात है। 'प्रेम' न करता हो, ऐसा कोई मानव संसार में नहीं है। सबसे दुष्ट अपराधी भी प्रेम करता है अर्थात् उसका विकास करने की हमें आवश्यकता नहीं है। हमारे प्रेम की दिशा में हमें परिवर्तन करना है और हमें देना भी है। "सेवा, प्रेम, दान'—एक ही उपदेश है—मैं इसे 'पूज्य गुरुदेव का त्रिशूल' कहती हूँ। त्रिशूल एक हत्थे पर तीन धारदार दाँते का साधन है। निर्मलता तथा निष्कामता, इस त्रिशूल का हत्था है। तीन धारदार दाँते, 'सेवा, प्रेम, दान' हैं जिनमें 'प्रेम' मध्य का भाग है; क्योंकि शेष दो को वह सम्भव बनाता है। वे साथ-साथ कार्य करते हैं—एक अन्य दाँते को समर्थ बनाता है। कोई भी 'सेवा' किये बिना नहीं रह सकता तथा बिना प्रेम के सेवा नहीं हो सकती। और यदि 'प्रेम' हृदय में होता है तो मानव स्वयं 'दान' करता है। 'प्रेम' इतना अमूर्त है कि 'सेवा' तथा 'दान' के द्वारा ही उसे अभिव्यक्त किया जा सकता है। ये प्रकटित प्रेम के दो पहलू हैं। पूज्य गुरुदेव 'सेवा' के महान् समर्थक थे। 'मानवसेवा' ही उनके लिए 'प्रभु-सेवा' थी।

प्रत्येक धर्म कहता है कि हमें ईश्वर की आराधना करनी चाहिए। यह आराधना हम मन्दिर, मस्जिद तथा गिरजाघर में करते हैं तो मानव में ईश्वर की आराधना क्यों न करें ? प्रत्येक जीव ईश्वर का मन्दिर है । अतः इस भाव से आप यदि 'सेवा' करेंगे तब ही आपकी 'सेवा' आराधना बनेगी। 'दान' भी मन की वृत्ति ही है । 'दान' का अर्थ केवल मात्र भौतिक वस्तुओं तथा धन का 'दान' नहीं है । वह भी आवश्यक है । 'दान' का अर्थ है परस्पर बाँटना। ईश्वर-कृपा से आपको जो भी मिला है उसे, जिन्हें कम मिला हो, ऐसे लोगों को बाँटना है । वह बाँटना इस प्रकार का भी हो सकता है जैसे कि दुःखी व्यक्ति के अश्रु पोंछना, हताश व्यक्ति में आशा का संचार करना, किसी के प्रति एक कृपापूर्ण चेष्टा अथवा प्रेमपूर्ण सहृदयी शब्द । जब ऐसा आन्तरिक प्रेम के साथ किया जाता है, तो केवल मात्र प्राप्तकर्ता को ही नहीं किन्तु दाता के लिए भी वह महान् वरदान बन सकता है ।

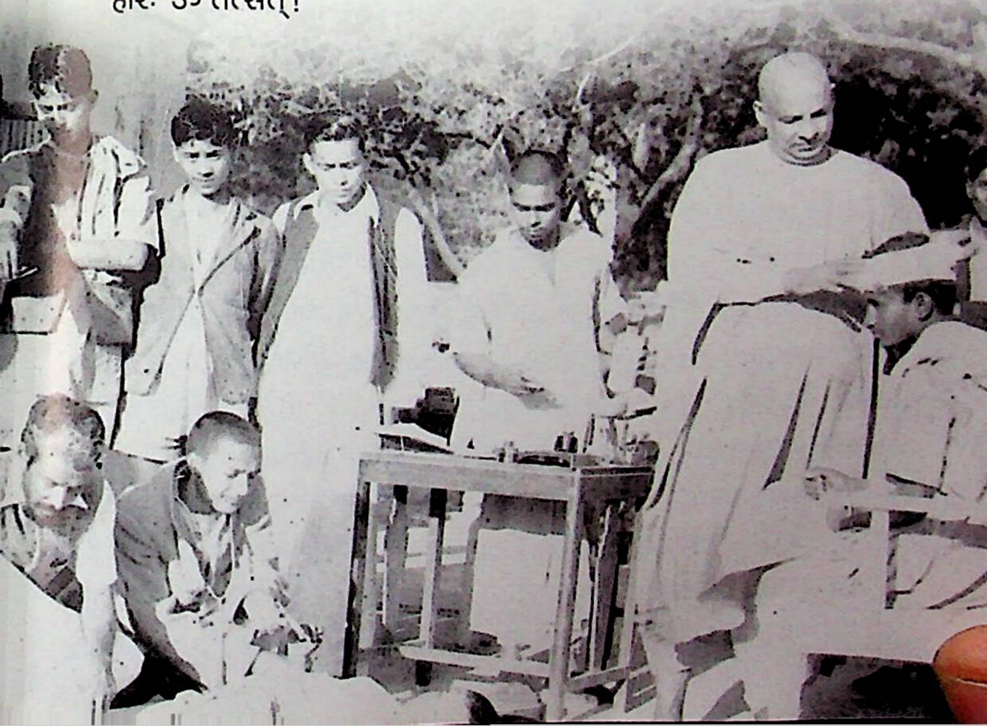
पूज्य गुरुदेव के त्रिशूल के आचरण के प्रारम्भ में आपको प्रयास करना होगा। किन्तु कुछ समय पश्चात् वह अनायास हो जायेगा तथा सहायता करना आपका स्वभाव बन जायेगा। किसी के प्रति कुछ सेवा करना ही दिव्य जीवन नहीं है । कर्म के पीछे निहित उद्देश्य तथा कोई भी कार्य करने में अन्तःकरण की पवित्रता ही दिव्य जीवन है। जीव मात्र में ईश्वर का निवास है, ऐसी वैश्विक भावना का बोध दिव्य जीवन है । हमारा मन जितना विशुद्ध होता है, उतना ही स्वार्थ कम होता है, मन अधिक स्थिर होता है। मन जितना अधिक स्थिर होता है, उतना ही अधिक सघन हमारा ध्यान होता है ।

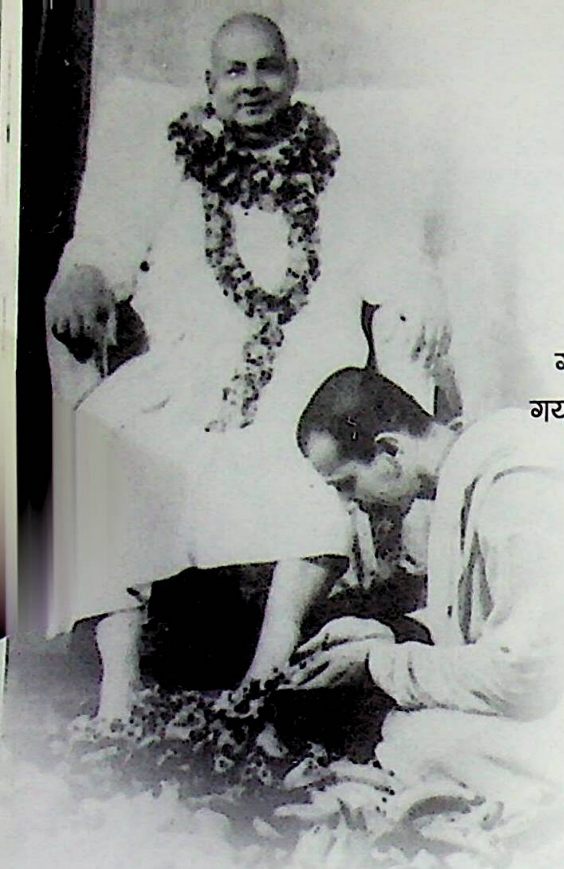
किन्तु दिव्य जीवन के हमारे स्वीकृतिकरण में तथा अभ्यास में बाधाएँ भी आयेंगी। यह एक कठिन चढ़ाई का मार्ग है तथा हमारा पतन भी हो सकता है । हमारी सच्ची कसौटियाँ ये ही हैं—अल्पमात्रा में भी विचलित हुए बिना कितनी बाधाओं को, लोगों द्वारा कितनी आलोचना को हम स्वीकार कर सकते हैं? इसलिए प्रत्येक रात्रि को निद्राधीन होने के पूर्व स्वयं के लिए पाँच-दस मिनट सुरक्षित रखें । कितनी बार आप विचलित या क्रोधित हुए, उनका विश्लेषण करें । आप कदापि हताश नहीं होना । प्रतिदिन आपको पुनश्च प्रारम्भ करना है और तब आपको ज्ञान होगा कि जीवन एक साहसिक

कार्य, एक दिव्य उद्यम बन जाता है।

पूज्य गुरुदेव के मतानुसार दिव्य जीवन यापन करने के सिवा जीवन का अन्य कोई उद्देश्य नहीं है। यदि हम पूज्य गुरुदेव के शिष्य हैं तो हमें यह देखना है कि हम सब दिव्य मानव बनें, क्योंकि उन्होंने हम पर इतनी कृपावृष्टि की है। वे आज भौतिक रूप से नहीं हैं; किन्तु उनकी कृपा अभी भी अवश्य ही हम सब पर है। यह सम्पूर्ण आश्रम उनकी दिव्य कृपा की ही अभिव्यक्ति है। यदि हममें पात्रता है तो वे सदैव हमारे साथ हैं तथा पथदर्शन कर रहे हैं, यह हमें याद रखना चाहिए। उस कृपा को स्वीकार करना हम पर अवलम्बित है। उनकी कृपा तो एक सागर के समान है। हम छोटा पात्र भर कर लेंगे तो उस पात्र के बराबर हमें कृपा-प्राप्ति होगी, यदि बड़ा पात्र भर कर लेंगे तो बड़े पात्रानुसार कृपा-प्राप्ति होगी। अतः हम सब विशाल पात्र बनें जिससे कि पूज्य गुरुदेव के कृपासागर में गहरी डुबकी लगा सकें, यथासम्भव ग्रहण कर सकें, उनका उपदेशानुसरण करें तथा इस प्रकार का जीवन यापन करें जो श्रेष्ठ, उत्तरोत्तर श्रेष्ठ तथा कल की अपेक्षा आज और अधिक श्रेष्ठ हो।

हरिः ॐ तत्सत्!





13

गुरु-सेवा

परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

गीता के श्लोक में प्रभु द्वारा दिया गया उज्ज्वल वचन :

यदा यदा हि धर्मस्य
ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं
सृजाम्यहम् ॥

(हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ, अर्थात् प्रकट करता हूँ।)

(गीता : ४-७)

पुनः, हमारे नेत्रों के सम्मुख पूर्ण हो रहा है। यह वचन भगवान् द्वारा द्वापर युग के अन्त में जब कलियुग का आरम्भ होनेवाला ही था, तब दिया गया था। दिव्य ज्ञान लुप्त हो रहा था, अतः मानव को वह पुनः प्रदान करने भगवान् आये हैं। वे हमारे पास उनकी विद्याशक्ति की विभूति के रूप में आये हैं। यह ही गुरुदेव की विभूति है कि उन्होंने ज्ञानयज्ञ को अपने जीवन का उच्च आध्यात्मिक ध्येय बनाया है। गुरुदेव के सिवा, अधर्मयुक्त इस भयजनक युग में, विवेक, वेदान्त और आध्यात्मिकता कहाँ होते, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। गुरुदेव के माध्यम से ईश्वर, हमारी आध्यात्मिकता की न केवल रक्षा कर रहे हैं अपितु हमारी आध्यात्मिकता का सकारात्मक रूप से निर्माण कर रहे हैं। मैं कह सकता हूँ कि गुरुदेव की कृपा जिन पर है, वे कलियुग में रहते हुए भी कलियुग में नहीं हैं। उन्होंने साधना की विविध पद्धतियाँ हमारे लिए

दी हैं, जिनकी शक्ति हमें संसार-सागर में डुबाने की शक्ति पर विजय पाने का सामर्थ्य देती है। इस प्रकार, गुरुदेव, कलियुग में सत्ययुग का प्रवाह जीवित कर उसे अक्षुण्ण रख रहे हैं। इस अणुयुग में, वे दूर-सुदूर पर्यन्त दिव्य ज्ञानरूप प्रकाश प्रसारित कर रहे हैं।

गुरुदेव की इस देन का प्रतिदान हम कैसे करेंगे? उन्होंने हमारे लिए जो महान् कार्य किया है और कर रहे हैं, क्या उनका ऋण चुकाना हमारे लिए सम्भव है? उन्हें प्रसन्न करने के लिए कौनसी गुरुसेवा हम कर सकते हैं? इस परिस्थिति में महानतम गुरुसेवा ज्ञानयज्ञ के रूप में होगी।

भारतवर्ष की उज्ज्वल संस्कृति ने हमें हर एक वस्तु को देवतुल्य समझना सिखाया है। श्रुतियाँ यह शाश्वत सत्य पुनः-पुनः उद्घोषित करती हैं **ईशावास्यं इदं सर्वम्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म** यह हमारे पूर्वजों द्वारा की गयी महिमान्वित खोज, हमारे लिए छोड़ी हुई विरासत है, एक अद्वितीय संकल्पना है कि हर एक वस्तु में, रजकण में, कीट मात्र में, आकाश में, हवा में—प्रत्येक वस्तु में भगवान् को देखना। हम विशेष रूप से किसी भी वस्तु, व्यक्ति की आराधना करते हैं, जिसमें दिव्यता विशेष रूप से प्रकट होती है; भगवान् श्रीकृष्ण का विभूति-योग इन प्राकट्यों के सविस्तृत नामनिर्देश करता है। भगवान् असाधारण रूप से गुरु में—जो कि शिष्य को आत्मज्ञान दे कर प्रबोधित करते हैं—भी प्रकट हैं। यही कारण है कि गुरु की दृश्यमान् भगवान् के रूप में आराधना करने के लिए हमें कहा जाता है।

स्वामी शिवानन्द जी में हमें एक विश्वगुरु, जो समस्त विश्व द्वारा पूजनीय हैं, ऐसे व्यक्ति की प्राप्ति हुई है।

ऐसे विश्वगुरु की ज्ञान-यज्ञ के रूप में गुरु-सेवा में, दो बातें अन्तर्निहित हैं : (१) गुरुदेव के सार्वभौमिक उपदेशों का यथासम्भव दूर-सुदूर पर्यन्त प्रसार और (२) हमारे दैनन्दिन जीवन में उन उपदेशों का आचरण—इन दोनों उद्देश्यों के लिए, हमें यह ज्ञान होना ही चाहिए कि गुरुदेव के उपदेशों के मुख्य सिद्धान्त कौनसे हैं। मूल सिद्धान्त जिनको गुरुदेव देना चाहते हैं, उनका संक्षेपीकरण निम्नानुसार किया जा सकता है :

(१) खाने और पीने के अतिरिक्त, जीवन का एक उच्चतर और अधिक उदात्त उद्देश्य है।

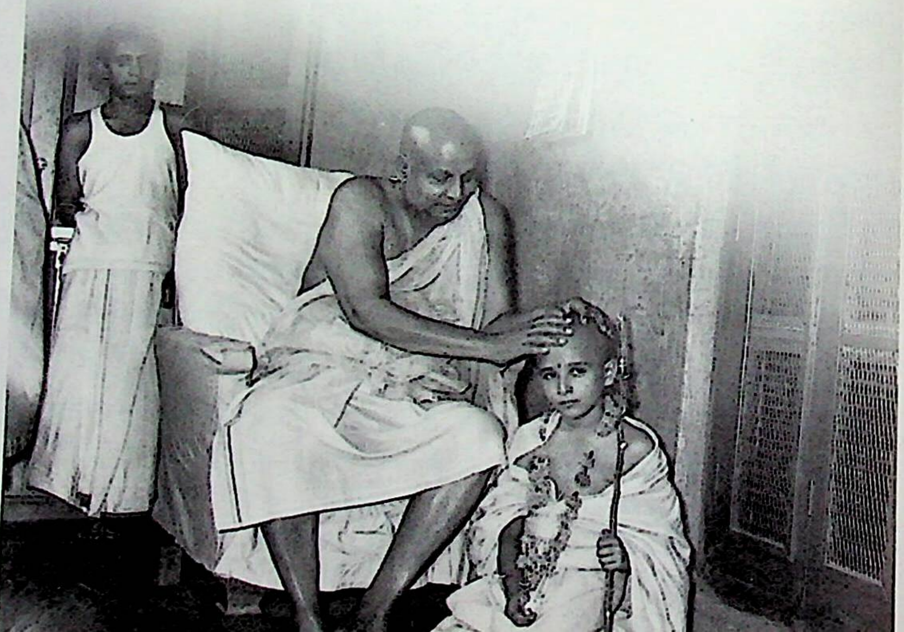
(२) वह उच्चतर उद्देश्य, आत्म-साक्षात्कार है।

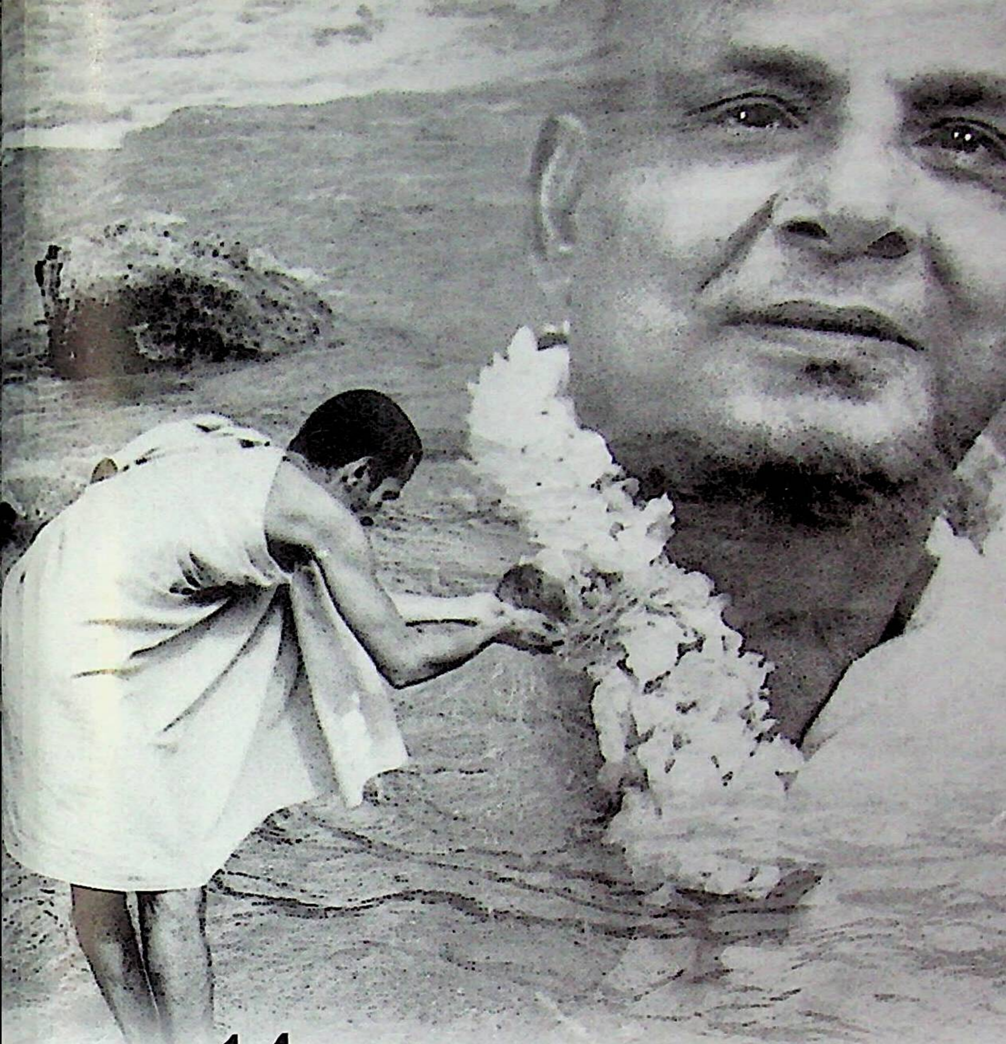
(३) आत्म-साक्षात्कार एकमात्र त्याग द्वारा ही हो सकता है।

(४) त्याग का अर्थ, गृहत्याग अथवा संन्यास-दीक्षा लेना नहीं है। सच्चा त्याग अहंकार और तृष्णा का त्याग है।

(५) ऐसा सच्चा त्याग प्रत्येक के लिए सम्भव है और प्रत्येक द्वारा आचरित होना ही चाहिए।

व्यक्ति के जीवन में, गुरुदेव के उपदेशों के आचरण का द्वितीय पहलू सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। गुरुदेव के उपदेशों को पूर्णतया जान लेना और उन्हें आचरित करना—यह ज्ञान-यज्ञ करने का वास्तविक रूप से, व्यावहारिक मार्ग है। इस पहलू की पूर्ति के लिए, मैं सुझाव दूँगा कि हर एक को गुरुदेव की "विश्व-प्रार्थना, बीस आध्यात्मिक नियम और साधना-तत्त्व" कण्ठस्थ करने चाहिए, हरएक को चार प्रमुख योगों की, कम से कम, रूपरेखा ज्ञात होनी चाहिए। मैं विशेष रूप से गुरुदेवरचित ESSENCE OF YOGA (योग-सार) पुस्तक पढ़ने का परामर्श देता हूँ। उसमें उनके सब उपदेशों का संक्षेप में समावेश है। गुरुदेव के हरएक शिष्य को महत्त्वपूर्ण आसनों और थोड़े महत्त्वपूर्ण कीर्तनों और भजनों का ज्ञान होना चाहिए।





14

श्री स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षाओं का सार

बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक नियम

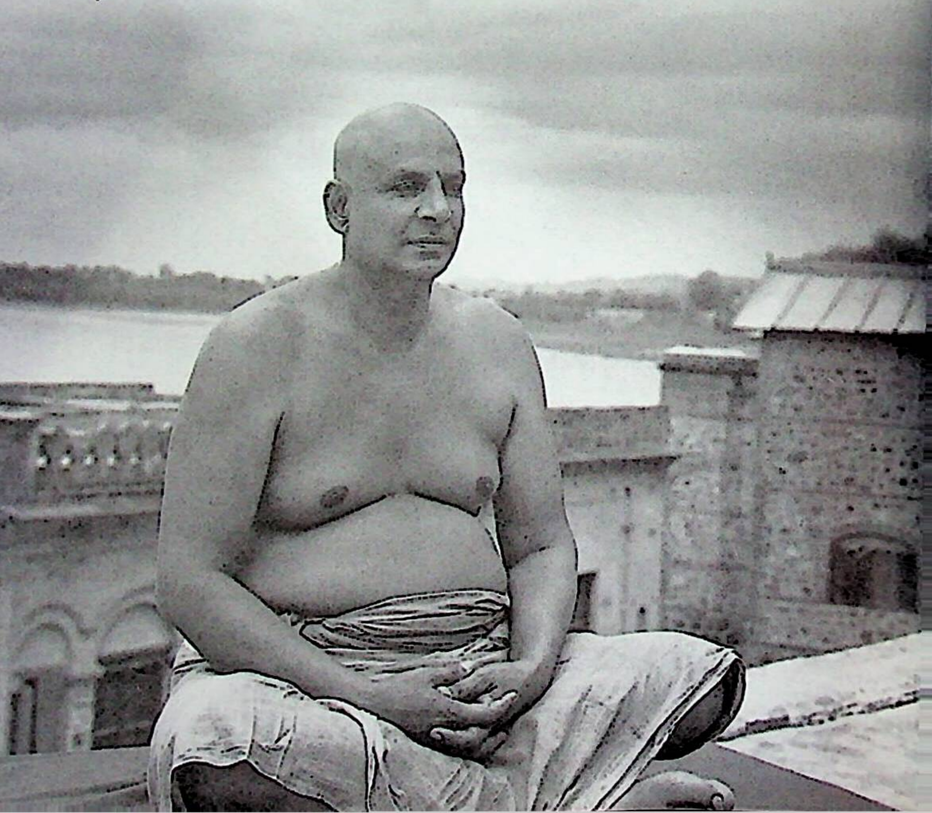
यह आध्यात्मिक नियम सम्पूर्ण साधनाओं का सार हैं। जो इनका पूर्ण हृदय से पालन करता है उसे कर्म, भक्ति, ज्ञान एवं योग सभी प्राप्त होंगे। व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं आत्मोन्नति की

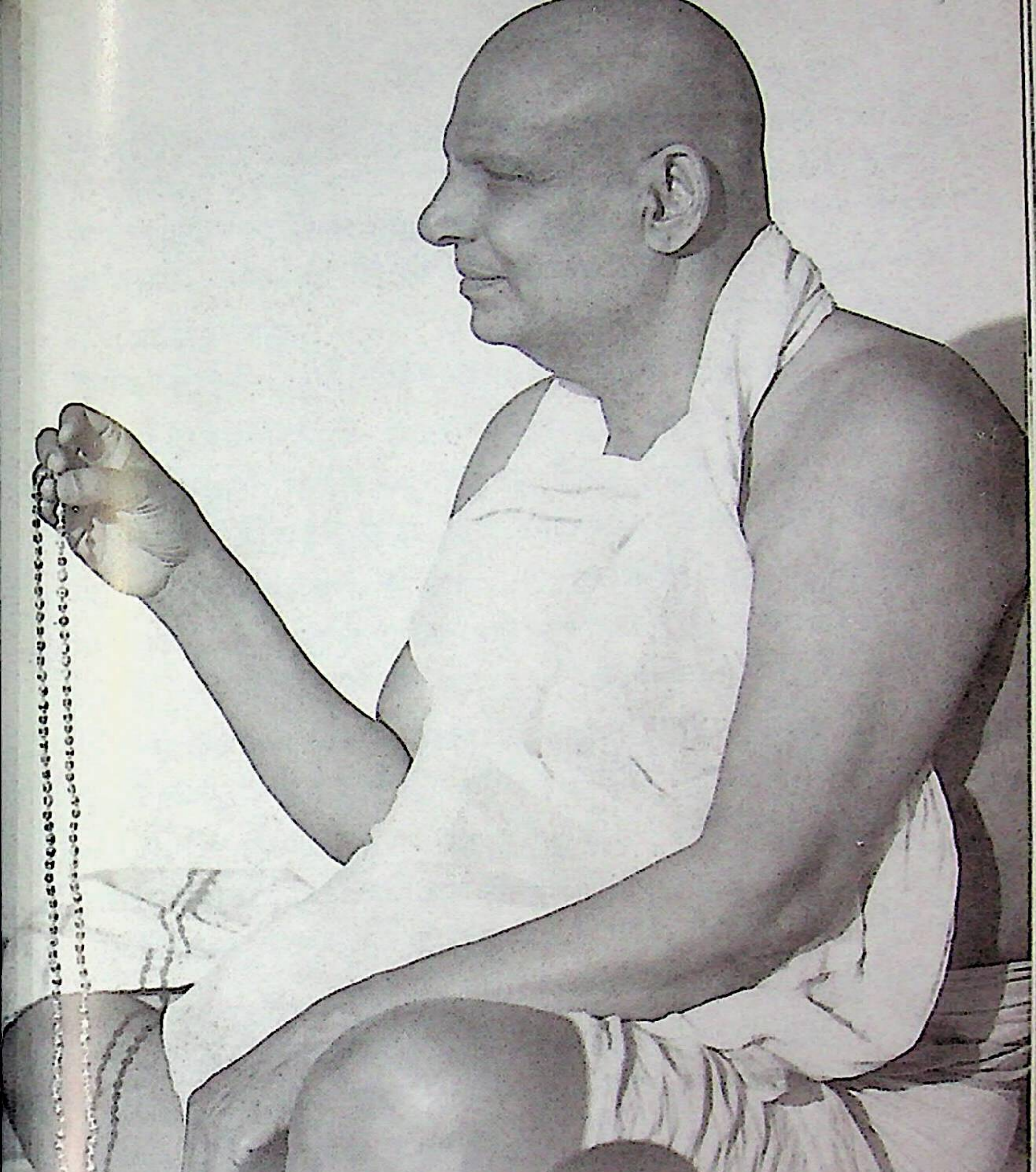
शीघ्रतम प्राप्ति का रहस्य इसी में निहित है।

१. **ब्राह्ममुहूर्त**-जागरण—नित्यप्रति प्रातः चार बजे उठिए। यह ब्राह्ममुहूर्त ईश्वर के ध्यान के लिए बहुत अनुकूल है।

२. **आसन**—पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन पर जप तथा ध्यान के लिए आधे घण्टे के लिए पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ जाइए। ध्यान के समय को शनैः-शनैः तीन घण्टे तक बढ़ाइए। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन अथवा सर्वांगासन कीजिए। हलके शारीरिक व्यायाम (जैसे टहलना आदि) नियमित रूप से कीजिए। बीस बार प्राणायाम कीजिए।

३.**जप**—अपनी रुचि या प्रकृति के अनुसार किसी भी मन्त्र (जैसे **ॐ, ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ श्री शरवणभवाय नमः, सीताराम, श्री राम, हरि ॐ या गायत्री**) का १०८ से २१,६०० बार प्रतिदिन जप कीजिए (मालाओं की संख्या १ और २०० के बीच)।





४. **आहार-संयम**—शुद्ध सात्त्विक आहार लीजिए। मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, खट्टे पदार्थ, तेल, सरसों तथा हींग का त्याग कीजिए। मिताहार कीजिए। आवश्यकता से अधिक खा कर पेट पर बोझ न डालिए। वर्ष में एक या दो बार एक पखवाड़े के लिए उस वस्तु का परित्याग कीजिए जिसे मन सबसे अधिक पसन्द करता है। सादा भोजन कीजिए। दूध तथा फल एकाग्रता में सहायक होते हैं। भोजन को जीवन-निर्वाह के लिए औषधि के

समान लीजिए। भोग के लिए भोजन करना पाप है। एक माह के लिए नमक तथा चीनी का परित्याग कीजिए। बिना चटनी तथा अचार के केवल चावल, रोटी तथा दाल पर ही निर्वाह करने की क्षमता आपमें होनी चाहिए। दाल के लिए और अधिक नमक तथा चाय, कॉफी और दूध के लिए और अधिक चीनी न माँगिए।

५. **ध्यान-कक्ष**—ध्यान-कक्ष अलग होना चाहिए। उसे ताले-कुंजी से बन्द रखिए।

६. **दान** —प्रतिमाह अथवा प्रतिदिन यथाशक्ति नियमित रूप से दान दीजिए अथवा एक रुपये में दस पैसे के हिसाब से दान दीजिए।

७. **स्वाध्याय**—गीता, रामायण, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, आदित्यहृदय, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, बाइबिल, जेन्द-अवस्ता, कुरान आदि का आधा घण्टे तक नित्य स्वाध्याय कीजिए तथा शुद्ध विचार रखिए।

८. **ब्रह्मचर्य**—बहुत ही सावधानीपूर्वक वीर्य की रक्षा कीजिए। वीर्य विभूति है। वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है। वीर्य ही सम्पत्ति है। वीर्य जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है।

९. **स्तोत्र-पाठ**—प्रार्थना के कुछ श्लोकों अथवा स्तोत्रों को याद कर लीजिए। जप अथवा ध्यान आरम्भ करने से पहले उनका पाठ कीजिए। इससे मन शीघ्र ही समुन्नत हो जायेगा।

१०. **सत्संग**—निरन्तर सत्संग कीजिए। कुसंगति, धूम्रपान, मांस, शराब आदि का पूर्णतः त्याग कीजिए। बुरी आदतों में न फँसिए।

११. **व्रत**—एकादशी को उपवास कीजिए या केवल दूध तथा फल पर निर्वाह कीजिए।

१२. **जप-माला**—जप-माला को अपने गले में पहनिए अथवा जेब में रखिए। रात्रि में इसे तकिये के नीचे रखिए।

१३. **मौन-व्रत**—नित्यप्रति कुछ घण्टों के लिए मौन-व्रत कीजिए।

१४. **वाणी-संयम**—प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलिए। थोड़ा बोलिए। मधुर बोलिए।

१५. **अपरिग्रह**—अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। यदि आपके पास चार कमीजें हैं, तो इनकी संख्या तीन या दो कर दीजिए। सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बिताइए। अनावश्यक चिन्ताएँ त्यागिए। सादा जीवन व्यतीत कीजिए तथा उच्च विचार रखिए।

१६. **हिंसा-परिहार**—कभी भी किसी को चोट न पहुँचाइए (अहिंसा परमो धर्मः)। क्रोध को प्रेम, क्षमा तथा दया से नियन्त्रित कीजिए।

१७. **आत्म-निर्भरता**—सेवकों पर निर्भर न रहिए। आत्म- निर्भरता सर्वोत्तम गुण है।

१८. **आध्यात्मिक डायरी**—सोने से पहले दिन-भर की अपनी गलतियों पर विचार कीजिए। आत्म-विश्लेषण कीजिए। दैनिक आध्यात्मिक डायरी तथा आत्म-सुधार रजिस्टर रखिए। भूतकाल की गलतियों का चिन्तन न कीजिए।

१९. **कर्तव्य-पालन**—याद रखिए, मृत्यु हर क्षण आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्तव्यों का पालन करने में न चूकिए। सदाचारी बनिए।

२०. **ईश-चिन्तन**—प्रातः उठते ही तथा सोने से पहले ईश्वर का चिन्तन कीजिए। ईश्वर को पूर्ण आत्मार्पण कीजिए।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

यह समस्त आध्यात्मिक साधनों का सार है। इससे आप मोक्ष प्राप्त करेंगे। इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। अपने मन को ढील न दीजिए।

साधना-तत्त्व अर्थात् सप्त-साधन-विद्या

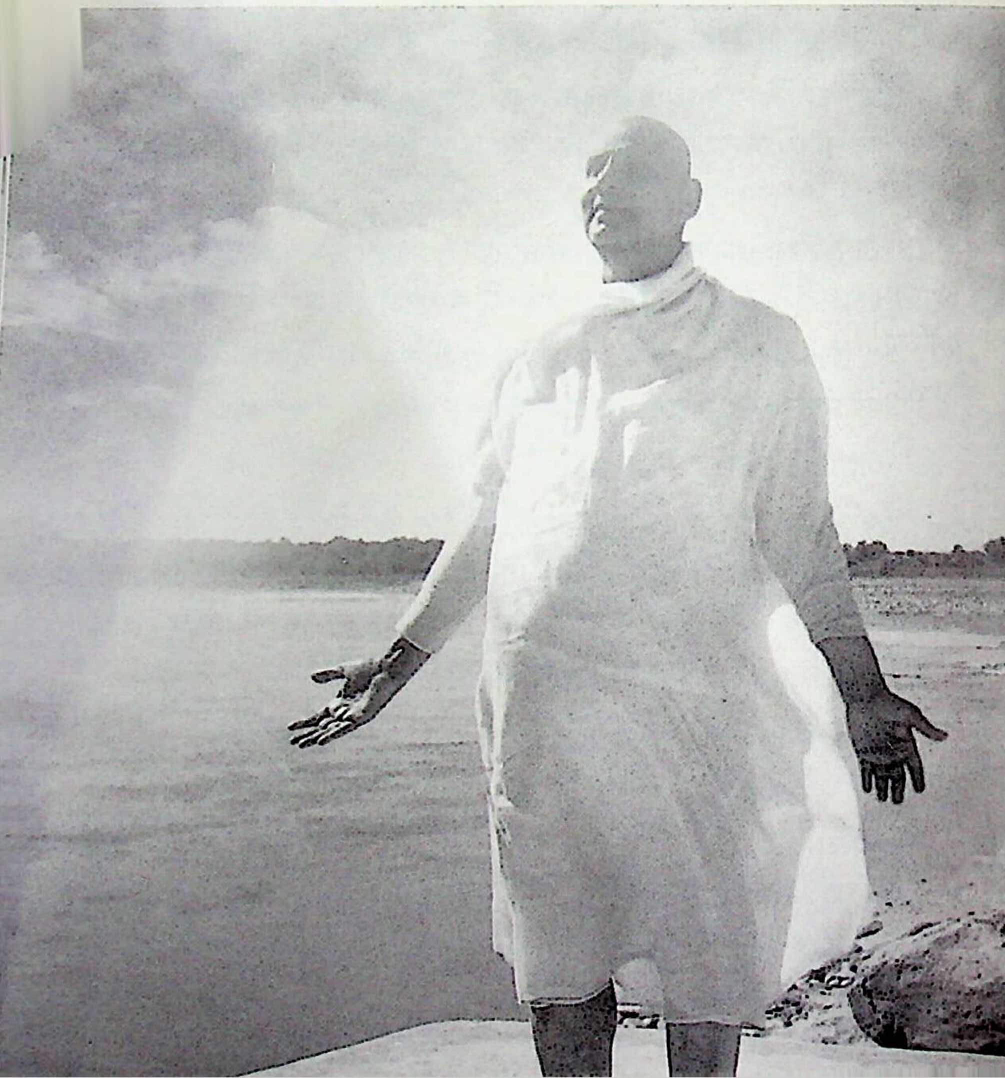
(मनुष्य की शीघ्र उन्नति तथा विकास के लिए शास्त्रोक्त साधनों का सार)

भूमिका

(क) हजारों टन सिद्धान्तों की अपेक्षा ग्राम-भर आचरण अधिक लाभप्रद है। योग, धर्म एवं दर्शन के ग्रन्थों में बताये हुए साधनों का अभ्यास कीजिए तथा आत्म-साक्षात्कार कीजिए।

(ख) इन बत्तीस शिक्षाओं के द्वारा सनातन धर्म का सार-तत्त्व उसके शुद्धतम रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये शिक्षाएँ नियत समय तक कार्य करने वाले आधुनिक व्यस्त गृहस्थों के लिए उपयुक्त हैं। अपनी सुविधानुसार इनमें परिवर्तन कर लीजिए और इनसे सम्बन्धित साधना की अवधि धीरे-धीरे बढ़ाते जाइए।

(ग) प्रारम्भ में केवल थोड़े से ऐसे संकल्पों का चयन कीजिए जिनसे आपके स्वभाव और चरित्र में भले ही थोड़ा परन्तु निश्चित सुधार हो। बीमारी, कार्य-व्यस्तता या अपरिहार्य पूर्व-संकल्पित कार्यों के कारण



यदि आप सक्रिय साधनाभ्यास न कर सकें, तो उसके स्थान पर बार-बार भगवद्-स्मरण कीजिए।

(१) आरोग्य-साधना

१. **मिताहार**—मिताहारी बनिए। हलका और सादा भोजन कीजिए। भोजन करने से पूर्व उसे भगवान् को अर्पण कीजिए। सन्तुलित आहार कीजिए।

२. **रजस्तमोवर्धक पदार्थों का त्याग**—यथासम्भव मिर्च, मसाले, इमली आदि राजसिक पदार्थों का सेवन कम कीजिए। चाय, कॉफी, ताम्बूल (पान), मांस-मछली, शराब तथा धूम्रपान का सर्वथा त्याग कीजिए।

३. **व्रत-उपवास**—एकादशी के दिन उपवास कीजिए। केवल दूध, कन्द और फल खाइए।

४. **आसन-व्यायाम**—योगासन तथा शारीरिक व्यायाम प्रतिदिन १५ से ३० मिनट तक कीजिए। प्रतिदिन दूर तक टहलने जाइए या ओजस्वी खेल खेलिए।



(२) प्राणशक्ति-साधना

५. **मौन-व्रत**—प्रतिदिन दो घण्टे तथा रविवार को चार से आठ घण्टे तक मौन रहिए।

६. **ब्रह्मचर्य-व्रत**—अपनी आयु तथा परिस्थितियों के अनुसार ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कीजिए। प्रारम्भ में महीने में एक बार से अधिक ब्रह्मचर्य भंग न करने का संकल्प कीजिए। इस अवधि को धीरे-धीरे बढ़ा कर वर्ष में एक बार तक ले आइए। अन्त में आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन की प्रतिज्ञा कीजिए।

(३) चरित्र-साधना

७. **वाणी-संयम**—सत्य बोलिए। मधुर बोलिए। विनीत वचन बोलिए। कम बोलिए।

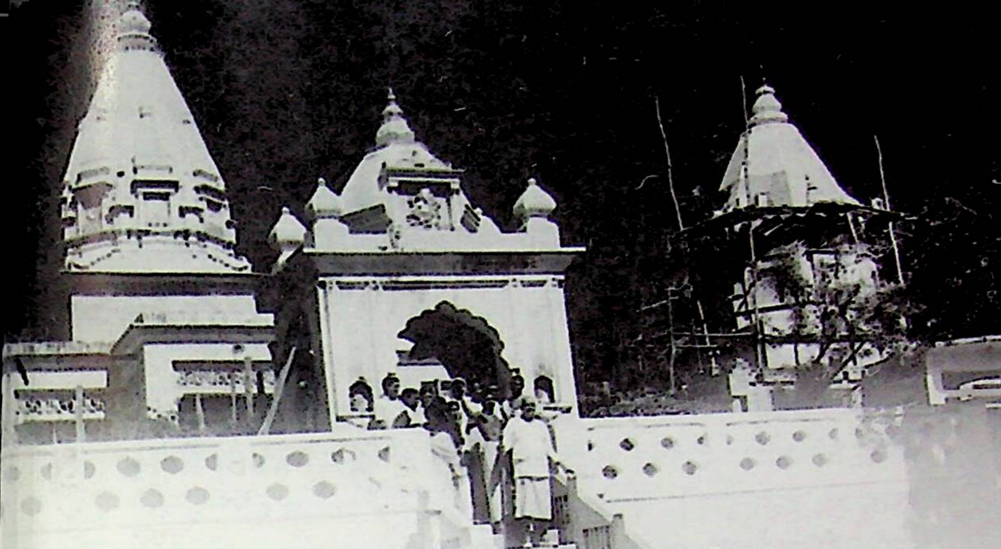


८. **अहिंसा**—मन, वचन और कर्म से किसी को भी कष्ट न पहुँचाइए। प्राणी मात्र पर दया-भाव रखिए।

९. **सरलता**—दूसरे के साथ अपने व्यवहार में निष्कपटता, उदारता तथा सरलता का परिचय दीजिए।

१०. **ईमानदारी**—ईमानदार बनिए। कठोर परिश्रम से जीविकोपार्जन कीजिए। अन्याय तथा अधर्म से मिलने वाला धन, वस्तु या उपहार मत स्वीकार कीजिए। सज्जनता तथा सत्यनिष्ठा का विकास कीजिए।

११. **क्षमा**—जब



आपको क्रोध आ जाये, तब उसे धैर्य, शान्ति, दया, प्रेम, करुणा तथा सहिष्णुता द्वारा नियन्त्रित कीजिए। दूसरों के अपराध भूल जाइए और उन्हें क्षमा कर दीजिए। व्यक्तियों तथा घटनाओं के अनुकूल अपने को परिवर्तित करने के लिए तैयार रहिए।

(४) इच्छाशक्ति-साधना

१२. **मन-संयम**—प्रतिवर्ष एक सप्ताह या एक महीने तक चीनी का और प्रत्येक रविवार को नमक का त्याग कीजिए।

१३. **कुसंग-त्याग**—ताश खेलना, उपन्यास पढ़ना, सिनेमा देखना, क्लबों में जाना छोड़ दीजिए। कुसंगति से दूर रहिए। सांसारिक व्यक्तियों से वाद-विवाद न कीजिए। ईश्वर में जिनकी श्रद्धा न हो या जो आपकी साधना की निन्दा करते हों, ऐसे लोगों से मिलना-जुलना बन्द कर दीजिए।

१४. **सादा जीवन**—अपनी आवश्यकताओं को कम कर दीजिए। अपनी सम्पत्ति को भी क्रमशः घटाते जाइए। 'सादा जीवन और उच्च विचार' अपनाइए।

(५) हृदय-साधना

१५. **परोपकार**—दूसरों की भलाई करना, यह परम धर्म है। कर्तव्य के अभिमान तथा कर्म-फल की आशा से अपने को मुक्त रखते हुए प्रति-सप्ताह कुछ घण्टे निष्काम सेवा कीजिए। अपने सांसारिक कर्तव्यों को भी इसी प्रकार कीजिए। कर्म पूजा है। इसे भगवान् को समर्पित कर दीजिए।

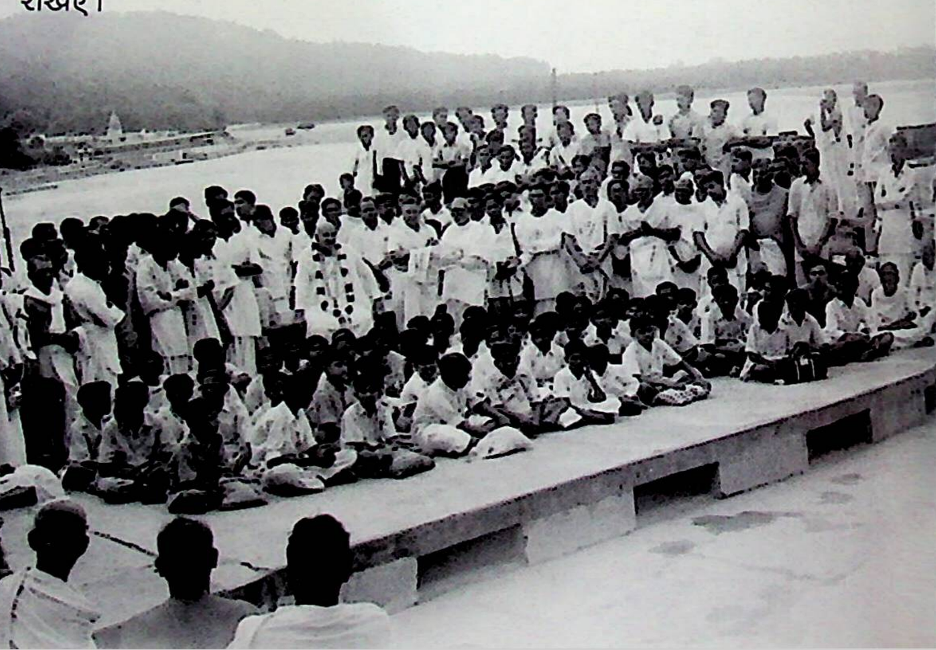
१६. **दान**—अपनी आय का दश प्रतिशत तक दान कीजिए। अपनी वस्तुओं में दूसरों को भी सहयोगी बनाइए। संसार के सभी प्राणियों को अपना कुटुम्बी मानिए। स्वार्थ-वृत्ति का त्याग कीजिए।

१७. **नम्रता**—विनम्र बनिए। सब प्राणियों को मानसिक नमस्कार कीजिए। सर्वत्र ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव कीजिए। मिथ्याभिमान, दम्भ तथा मिथ्याचार का त्याग कीजिए।

१८. **श्रद्धा**—गीता, गुरु और गोविन्द में अविचल श्रद्धा रखिए। सर्वदा ईश्वर को आत्म-समर्पण करते हुए प्रार्थना कीजिए—'हे प्रभु! जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा ही हो। मैं कुछ भी नहीं चाहता।' समस्त परिस्थितियों में या घटनाओं में ईश्वरेच्छा को प्रधान समझ कर समत्व-भाव से उसके प्रति अपने को अर्पित कीजिए।

१९. **सर्वात्म-भाव**—सब प्राणियों में ईश्वर के दर्शन कीजिए और उनसे आत्मवत् प्रेम कीजिए। किसी से घृणा न कीजिए।

२०. **नाम-स्मरण**—सर्वदा ईश्वर का स्मरण करते रहिए। कम-से-कम प्रातःकाल सो कर उठने पर, दैनिक कार्यों में विराम के समय और रात में सोने से पूर्व ईश्वर का स्मरण अवश्य कीजिए। अपनी जेब में एक जप-माला रखिए।



(६) मानसिक-साधना

२१. **गीता-स्वाध्याय**—प्रतिदिन गीता का एक अध्याय या उसके १० से २५ श्लोकों का अर्थ-सहित अध्ययन कीजिए। मूल गीता को समझने के लिए यथेष्ट संस्कृत सीख लीजिए।

२२. **गीता कण्ठस्थ करना**—धीरे-धीरे पूरी गीता को कण्ठस्थ कर लीजिए। गीता की एक पुस्तक सदा अपनी जेब में रखिए।

२३. **स्वाध्याय**—रामायण, भागवत, उपनिषद्, योगवासिष्ठ या अन्य धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय प्रतिदिन अथवा छुट्टी के दिन कीजिए।

२४. **सत्संग**—कीर्तन-सत्संग-कार्यक्रमों के तथा धार्मिक सभाओं के प्रत्येक अवसर का लाभ उठाइए। रविवार या छुट्टी के दिन ऐसे महासम्मेलनों का आयोजन कीजिए।

२५. **मन्दिर-गमन**—किसी भी देव-मन्दिर में या पूजा- स्थल में प्रति सप्ताह कम-से-कम एक दिन अवश्य जाइए। उन स्थानों पर कीर्तन, व्याख्यान आदि की व्यवस्था कीजिए।

२६. **एकान्त-सेवन**—अवकाश या छुट्टी के दिनों में किसी पवित्र स्थान में जा कर एकान्त-सेवन कीजिए और सारा समय साधना में बिताइए अथवा सन्त-महात्माओं का सत्संग कीजिए।

(७) आध्यात्मिक साधना

२७. **ब्राह्ममुहूर्त-जागरण**—रात में जल्दी सो कर प्रातःकाल चार बजे उठिए। शौच, स्नानादि से निवृत हो जाइए।

२८. **जप, प्रार्थना, ध्यान आदि**—पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ कर पाँच से छह बजे तक प्राणायाम, ध्यान, जप, स्तोत्र, प्रार्थना और कीर्तन कीजिए। एक ही आसन में स्थिर हो कर बैठने का अभ्यास धीरे-धीरे कीजिए।

२९. **सन्ध्या-पूजा**—अपनी दैनिक सन्ध्या, गायत्री-जप, नित्यकर्म और पूजा नियमित रूप से कीजिए।

३०. **मन्त्र-लेखन**—अपने इष्टमन्त्र या भगवान् के नाम को प्रतिदिन

१० से ३० मिनट तक एक पुस्तिका में लिखिए।

३१. **संकीर्तन-भजन**—रात्रि में स्वजनों, मित्रों आदि के साथ बैठ कर आधे से एक घण्टे तक नाम-संकीर्तन, स्तोत्र, प्रार्थना, भजन आदि का गायन कीजिए।

३२. **दैनन्दिनी**—उपर्युक्त रूपरेखा के अनुसार वार्षिक संकल्प लीजिए। आपमें नियमितता, दृढ़ता एवं स्थिरता का होना आवश्यक है। साधना का विवरण प्रतिदिन आध्यात्मिक डायरी में लिखिए। प्रतिमास उस पर पुनर्विचार करते हुए अपनी त्रुटियों को सुधारिए।

अठारह सद्गुणों का गीत

प्रशान्ति, नियमितता, निरभिमानता,
सत्यता, निष्कपटता, सरलता,
धैर्यशीलता, स्थिरता, अक्रोधता,
अनुकूलता, नम्रता, संलग्नता,



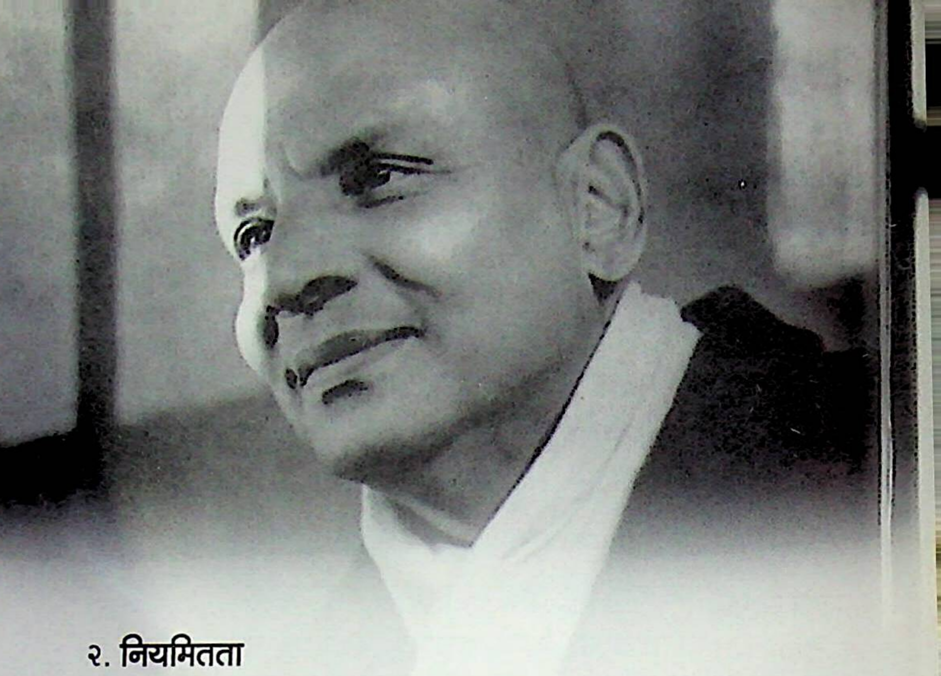
पूर्णता, शिष्टता, उदारता,
दानशीलता, विशालता, शुद्धता,
अभ्यास करें—इन अठारह सद्गुणों का,
प्राप्त करेंगे आप अमरता।
ब्रह्म ही है एकमेव सत्यता,
नाम-रूप हैं सब असत्-मिथ्या;
वास करेंगे आप, नित्य और असीमता में।
देखेंगे एकता, अनेकता में।
नहीं पा सकते इसे आप विश्वविद्यालयों में,
पा सकते हैं किन्तु वह गुरु-अनुकम्पा में।
पा सकते हैं इसे 'फारेस्ट-अकादमी' में!

अठारह सद्गुण

जीवन में सभी को, और आध्यात्मिक जीवन में विशेष रूप से साधकों को, सफलता प्राप्त करने के लिए, यह आवश्यक है कि वह कतिपय मूलभूत सद्गुण विकसित करें। सद्गुण शक्ति, सामर्थ्य एवं शान्ति की कुंजी हैं। सद्गुण-सम्पन्न व्यक्ति सदा प्रसन्न, शान्त तथा सम्पन्न रहता है। लोग मुझे पूछते हैं कि मैं उन्हें कुछेक विशेष सद्गुण बताऊँ जो प्रत्येक व्यक्ति को विकसित करने चाहिए। **अठारह सद्गुणों का गीत** में उन सब सद्गुणों की गणना की गयी है जो सभी को अर्जित करने चाहिए। किसी भी एक सद्गुण को अपना लें और उसे पूर्णता की सीमा तक विकसित करें; इसके विपरीत गुण को, उसके सूक्ष्मतम रूप पर्यन्त नष्ट कर दें। इन सद्गुणों पर, इनके लाभों पर, इनको विकसित करने के सभी उपायों पर मनन करें। यह अठारह सद्गुण इस प्रकार हैं :

१. प्रशान्ति

अपने अन्तर में शान्ति बनाये रखें। अपने प्रशान्त मुख-मण्डल से आन्तरिक शान्ति और प्रसन्नता प्रसारित होने दें। प्रशान्त मुख-मण्डल सदैव शान्ति से परिपूर्ण, प्रसन्न और गम्भीर होता है तथा कभी भी उग्र भावों का प्रदर्शन नहीं करता। यह शान्त झील के समान होता है।



२. नियमितता

अपने दैनिक कार्यों में, स्वभाव में और आध्यात्मिक साधना में नियमित रहें। प्रतिदिन निश्चित समय पर उठें; ठीक और निर्धारित समय पर सोयें। अपनी दैनिक गतिविधियों को घड़ी के समान नियमितता से करें। इस प्रकार करने से आप चिन्ता और तनाव से मुक्त रहेंगे तथा अव्यवस्थित एवं घटिया काम नहीं करेंगे। तब आप सही समय पर सही काम कर सकेंगे।

३. निरभिमानता

अपने जन्म, पद, योग्यता, उपाधि एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों की कभी भी डींग मत हाँकें। सभी दृश्य वस्तु-पदार्थों की क्षण-भंगुरता को याद रखें। दूसरों की प्रशंसा करें। सबमें अच्छाई देखें। यहाँ तक कि क्षुद्रतम प्राणियों के साथ भी समान-भाव से व्यवहार करें।

४. सत्यता

आपकी वाणी आपके विचारों के समान हो, आपके कार्य आपकी वाणी के अनुसार हों। आपके मन, वचन और कर्मों में अनुकूलता होनी चाहिए।

५. निष्कपटता

निष्कपट बनें। अपनी बातचीत में सादगी लायें। शब्दों और विषयों को घुमा-फिरा कर न कहें। स्पष्ट बनें । चतुराई, चालाकी और कुटिलता से दूर

रहें। सादगीपूर्ण वस्त्र पहनें। सादा भोजन खायें। बाल-सुलभ स्वभाव को विकसित करें।

६. सरलता

सत्यवादी बनें। अपने वचनों का पालन करें। बढ़ा-चढ़ा कर बात न कहें। यथार्थ को घुमायें-फिरायें नहीं। बोलने से पहले दो बार सोच लें। सत्य बोलें, मधुर बोलें, अल्प बोलें।

७. धैर्यशीलता

शान्त रहें। अपमान, चोट, कष्ट, असफलता और अनादर को धैर्यपूर्वक सहन करें। प्रशंसा, प्रसन्नता, सुख, सफलता और सम्मान पा कर गर्व एवं उल्लास से फूल न उठें। दोनों अवस्थाओं और परिस्थितियों को समान दृष्टि से देखें। मित्रों और शत्रुओं के प्रति एक जैसा व्यवहार रखें। किसी भी वस्तु, स्थिति अथवा व्यक्ति द्वारा अपनी आन्तरिक शान्ति को नष्ट न होने दें।

८. स्थिरता

इस बात को याद रखें कि यदि आपका मन अस्थिर अर्थात् चंचल है तो आप कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। विचारशील बनें। अपना लक्ष्य अथवा उद्देश्य निर्धारित करें। उस लक्ष्य को सदैव स्मरण करते रहें। एक क्षण के लिए भी उस लक्ष्य को अपने मन से दूर न होने दें।

९. अक्रोधता

चिड़चिड़ाहट, क्रोध के उग्र-प्रस्फोटन की आरम्भिक अवस्था है। मानसिक सन्तुलन की व्याकुलता के प्रति सावधान रहें। मन-रूपी झील में उठने वाली क्रोध की तरंगों के प्रति जागरूक रहें। यदि एक भी ऐसी तरंग उठती प्रतीत हो, तो उसे तुरन्त तभी और वहीं शान्त कर दें। उन्हें और अधिक बढ़ने न दें। तब आप क्रोधहीनता की शान्तिपूर्ण एवं प्रेममयी अवस्था को प्राप्त कर लेंगे।

१०. अनुकूलता

जिन लोगों के आप सम्पर्क में आते हैं, उनके स्वभाव को जान लें। उनके साथ अपना व्यवहार, अपना सम्बन्ध इस ढंग का रखें जो उनको प्रसन्नता

देने वाला हो। अन्य लोगों की सनकों अथवा झकों को भी प्रसन्नतापूर्वक सुनते हुए सहन करें। सदैव दूसरों के अनुकूल उत्तर दें। सबसे प्रेम करें, सबकी सेवा करें। अनुभव करें कि सभी के भीतर एक वही परमात्मा उनकी आत्मा के रूप में विद्यमान है।

११. नम्रता

सबका सम्मान करें। प्रत्येक को हाथ जोड़ कर शिर झुका कर नमस्कार करें। बड़ों और सम्माननीय लोगों के सामने तेज या ऊँची आवाज में वार्तालाप न करें। चलते समय अपनी दृष्टि अपने पैरों में रखें। सबमें परम पिता परमात्मा के दर्शन करें, ऐसा विचार रखें कि आप उस प्रभु के सेवक हैं और उनका सेवक होने के नाते सबके सेवक हैं। किसी को भी अपने से छोटा या तुच्छ न समझें।



१२. **संलग्नता**

यह स्थिरता की मित्र है। एक बार जब आपने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया और अपना पथ चुन लिया, तब इस पर स्थिर हो जायें। फिर इससे इधर-उधर न हों। दृढ़ रहें। अपने मूलभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में कभी भी समझौता न करें। अपना मानसिक भाव इस प्रकार का रखें, "मुझे भले ही जीवन से हाथ धोना पड़े, किन्तु मैं अपने पथ पर संलग्न रहूँगा, इससे हटूँगा नहीं, मैं अपने सिद्धान्तों को नहीं छोड़ूँगा।'"

१३. **पूर्णता**

परिपूर्ण अथवा समग्र व्यक्तित्व का विकास करें। अपने चारित्र्य के समस्त ढीले छोर कस लें। उत्तम आचरण एवं उच्च नैतिक सिद्धान्तों से सम्पन्न व्यक्ति बनें। नेक, सदाचारी जीवन जियें। अपने-आपमें से नैतिकता की मृदु सुगन्ध महकने दें। तब प्रत्येक व्यक्ति आप पर भरोसा करेगा, आपकी बात मानेगा, आपका आदर करेगा और आपका सम्मान करेगा।

१४. **शिष्टता**

निकृष्ट विचार एवं भावनाओं को विष्ठावत् अथवा विषवत् त्याग दें। अन्य लोगों के दोषों की ओर कभी भी न देखें। प्रत्येक के सद्गुणों की प्रशंसा करें। शिष्टतापूर्ण आचरण रखें। निम्न विचारों, शब्दों अथवा कार्यों



के समक्ष कभी भी झुकें नहीं।

१५. उदारता

प्रत्येक वस्तु-पदार्थ एवं परिस्थिति के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनायें। दूसरों के दोषों की उपेक्षा करें। अपने प्रत्येक कार्य में उदात्त एवं उदार भावना बनाये रखें। गप्पबाजी और बचकानी बातों से दूर रहें। तुच्छ एवं सामान्य छोटी-छोटी बातों की ओर मन को आकर्षित न होने दें।

१६. दानशीलता

दान दें, दे दें, देते रहें! सद्भावना और प्रेम के विचार प्रसारित करें। दूसरों के दोषों को क्षमा कर दें। जो व्यक्ति आपको चोट या कष्ट पहुँचाता है, उसे आशीर्वाद दें। जो-कुछ भी आपके पास है, उसे सबके साथ बाँटें। सबको वस्त्र और भोजन का दान दें। आध्यात्मिक ज्ञान का दान दें। आपके पास जो भी धन-सम्पत्ति, ज्ञान और आध्यात्मिक विद्या है, उसका यह मान कर सदुपयोग करें कि भगवान् ने अपनी समस्त सन्तान में वितरित करने के लिए ही आपको यह सब सौंपा है।

१७. विशालता

जो-कुछ भी आप दें, खुले हृदय से दें। विशाल-हृदयी बनें। कंजूस न बनें। दूसरों की प्रसन्नता में, दूसरों को सुख पहुँचाने में प्रसन्नता का अनुभव करें। विशालता दान की ही सहोदरी-सद्गुण है। विशालता दानशीलता, उदारता और शिष्टता की ही परिपूर्णता है।

१८. शुद्धता

शुद्ध-हृदयी बनें। काम, क्रोध, लोभ तथा अन्य दुर्गुणों को दूर करें। अपने विचारों को शुद्ध करें। अपने मन में कोई भी कुविचार प्रविष्ट न होने दें। सदैव परमात्मा के सम्बन्ध में चिन्तन करें। दूसरों की भलाई का ही सोचें। अपनी वाणी की शुद्धता को बनाये रखें। कभी भी अश्लील, कठोर अथवा निष्ठुर शब्दों का प्रयोग न करें। शरीर की शुद्धता भी बनाये रखें। शरीर को स्वच्छ रखें। अपने वस्त्र तथा आस-पास का स्थान स्वच्छ रखें। शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक शुद्धता के नियमों का भली-भाँति पालन करें।

यह अठारह सद्गुण आपके लिए परमात्मा के साम्राज्य का पथ प्रशस्त कर देंगे। यह आपके लिए अमरत्व के द्वार खोल देंगे। इस संसार में रहते हुए भी आप महान् सफलता प्राप्त करेंगे। जो व्यक्ति अत्यधिक मात्रा में इन सद्गुणों को अर्जित कर लेता है, वह वास्तव में सन्त ही है, वह सबके लिए सम्माननीय, श्रद्धेय और पूजनीय बन जायेगा।

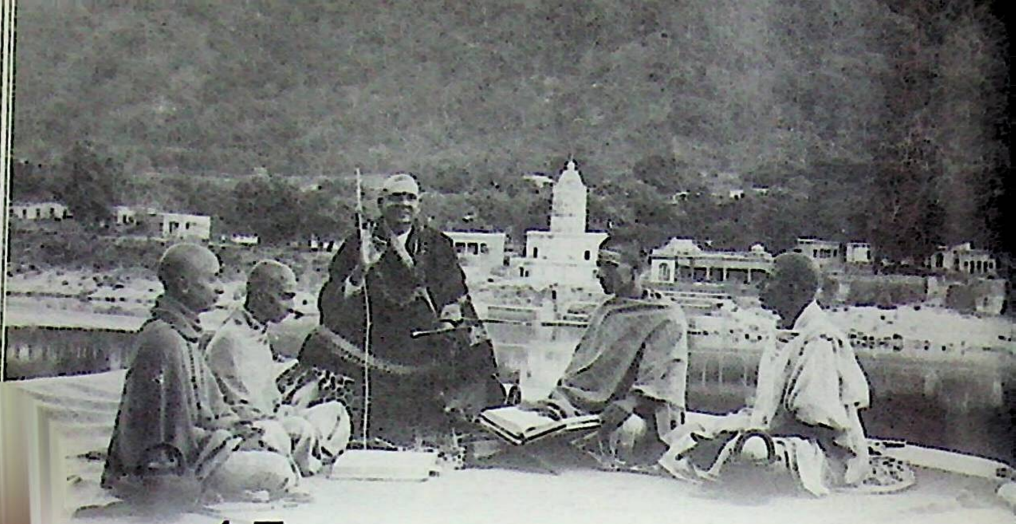
विश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।
हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।
हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें। सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

समस्त सार्वजनिक समूहों में गायी जाने के लिए यह धर्म-निरपेक्ष प्रार्थना अत्यन्त उपयुक्त है। यह सम्पूर्ण विश्व के लिए तथा सभी को अपने में समेटे हुए है। इस सुन्दर प्रार्थना को हमेशा घर में और सार्वजनिक सभाओं में भी गायें।

यह प्रार्थना सबमें परस्पर प्रेम उत्पन्न करेगी, आपके कार्यों का आध्यात्मीकरण करेगी तथा दिव्य जीवन के स्वर्णिम रहस्यों को उद्घाटित करेगी।

—स्वामी शिवानन्द



15

डिवाइन लाइफ (दिव्य जीवन)

१३-१-१९३६ से १३-१-२०११ तक

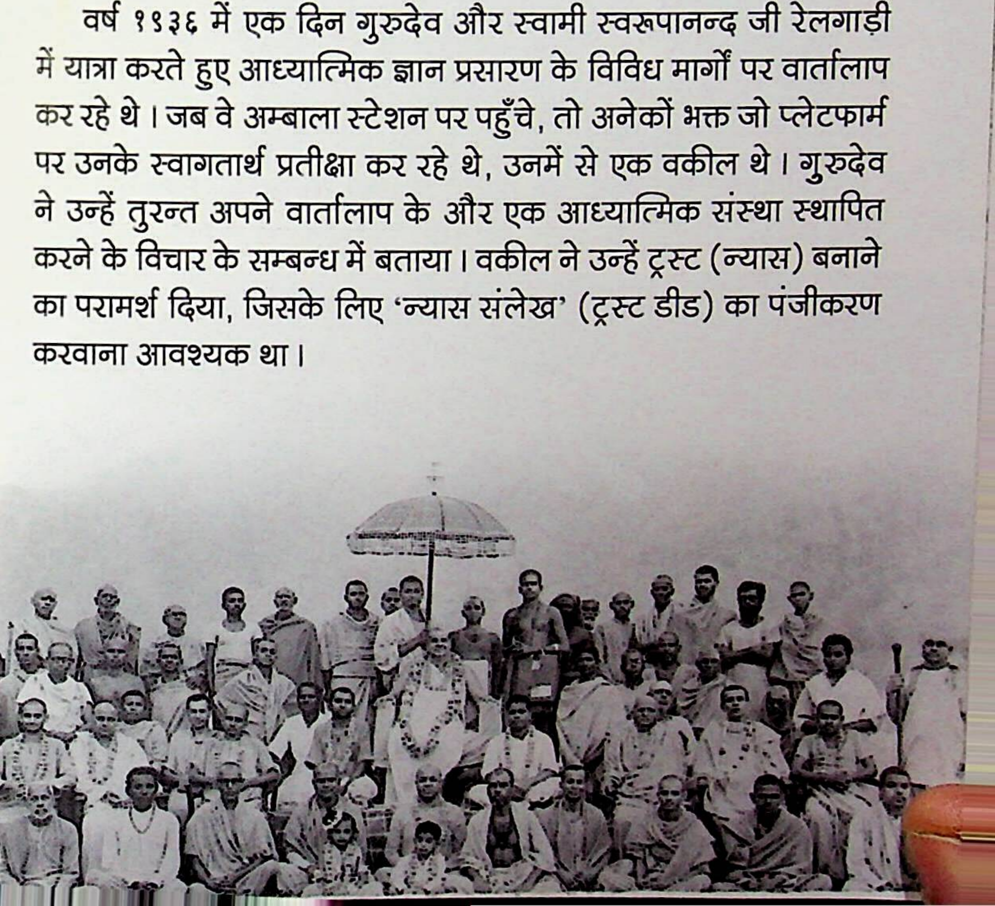
संस्था का जन्म

"आज के इस युग में आदर्श संस्थाओं की अत्यधिक आवश्यकता है। वे समस्त विश्व के लिए एक वरदान हैं, क्योंकि मानव मात्र की मानसिक शान्ति एवं कल्याण के लिए उनका अत्यधिक योगदान है। आध्यात्मिक संस्थाएँ लोगों की आत्मा का कल्याण करेंगी। अतः लोगों को ऐसी संस्थाओं की देख-भाल करनी चाहिए। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे को पुष्ट करते हुए परस्पर परम कल्याण करेंगी।"—**स्वामी शिवानन्द**

स्वामी शिवानन्द जी ने कभी भी शिष्य बनाने अथवा आश्रम स्थापित करने की कामना नहीं की। उनकी एकमात्र इच्छा एकान्तवास करते हुए ध्यान एवं प्रभु-नाम-संकीर्तन और भजन करने की थी। किन्तु केवल सबसे प्रेम करने तथा निष्ठापूर्वक सबकी सेवा करने के लिए ही, समय की अत्यावश्यक माँग को देखते हुए उन्होंने अपनी उस इच्छा का त्याग किया। जो माँग कर लायी हुई भिक्षा को भी दूसरों के साथ बाँटे बिना ग्रहण नहीं कर सकते थे, वह इस सर्वोत्तम निधि को अपने तक ही सीमित कैसे रख सकते थे। इसे तो उन्हें समस्त विश्व को देना ही था।

उनके निकटवर्ती साधुओं ने उनकी आध्यात्मिक महिमा को पहचान लिया और उनके पास परामर्श और निर्देशन के लिए आने लगे। इस प्रकार 'साधु-संघ' अस्तित्व में आ गया। १९३२ में स्वामी परमानन्द जी, स्वामी स्वरूपानन्द जी और स्वामी आत्मानन्द जी उनके द्वारा दीक्षित हुए तथा बाद में उनके घनिष्ठतम शिष्य एवं सहायक बने। स्वर्गाश्रम के प्रारम्भिक दिनों में उन्हें दो ही शिष्य रखने की अनुमति दी गयी थी। किन्तु क्योंकि बहुत से अन्य लोग भी उनके शिष्य हो कर आना चाहते थे, इसलिए १९३४ में उन्होंने अपने प्रिय कुटीर को छोड़ दिया और गंगा जी के दूसरे तट पर, राम आश्रम के निकट एक जीर्ण-शीर्ण छप्पर में रहने के लिए आ गये। इन वर्षों के दौरान वह प्रवचन करते हुए तथा कीर्तन और नृत्य करते हुए, एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रायः यात्राओं में ही रहे। लोग उनके पास आने लगे; सहस्रों नहीं, लाखों की संख्या में आने लगे।

वर्ष १९३६ में एक दिन गुरुदेव और स्वामी स्वरूपानन्द जी रेलगाड़ी में यात्रा करते हुए आध्यात्मिक ज्ञान प्रसारण के विविध मार्गों पर वार्तालाप कर रहे थे। जब वे अम्बाला स्टेशन पर पहुँचे, तो अनेकों भक्त जो प्लेटफार्म पर उनके स्वागतार्थ प्रतीक्षा कर रहे थे, उनमें से एक वकील थे। गुरुदेव ने उन्हें तुरन्त अपने वार्तालाप के और एक आध्यात्मिक संस्था स्थापित करने के विचार के सम्बन्ध में बताया। वकील ने उन्हें ट्रस्ट (न्यास) बनाने का परामर्श दिया, जिसके लिए 'न्यास संलेख' (ट्रस्ट डीड) का पंजीकरण करवाना आवश्यक था।

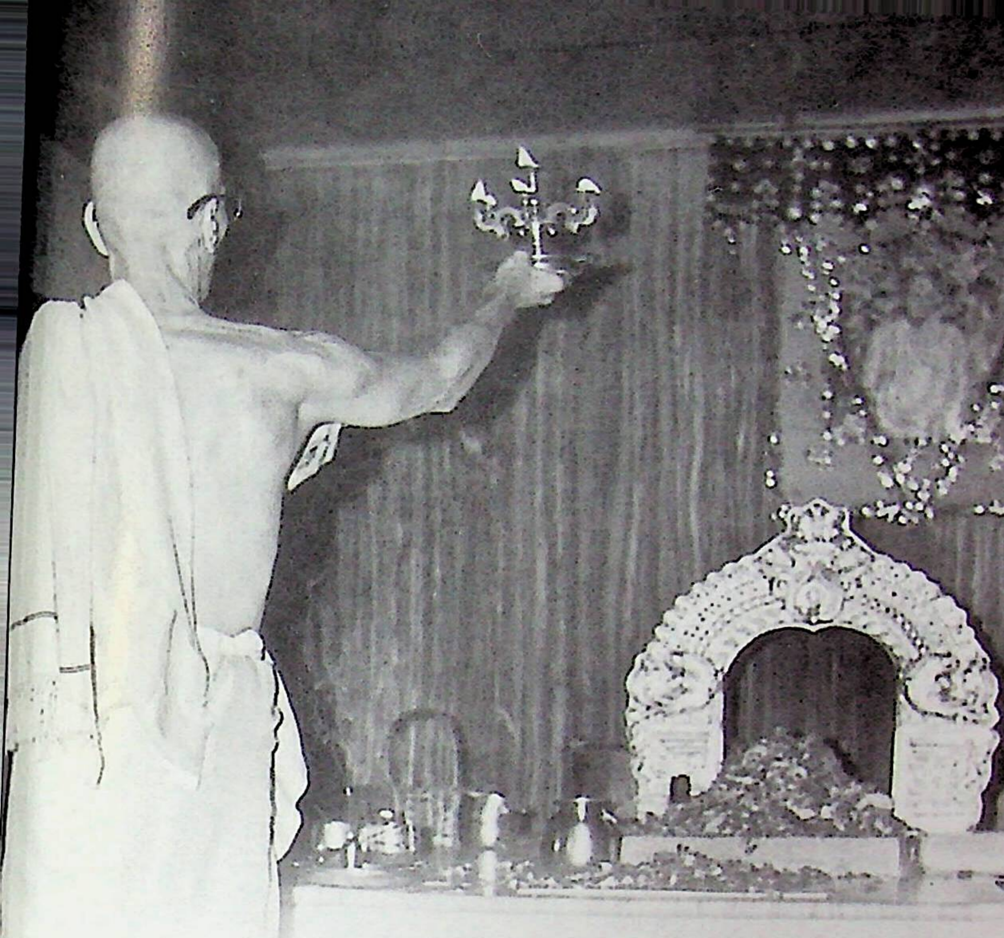




"आइए, इसे अभी और यहीं कर लेते हैं!" गुरुदेव ने यह कहते हुए अपनी आगे की यात्रा वहीं—अम्बाला में ही रोक दी। गुरुदेव ने तत्काल ही 'न्यास-संलेख' तैयार किया तथा उसी दिन, अर्थात् १३ जनवरी १९३६ को अम्बाला छावनी में पंजीकृत करवा लिया। बहुत से लोग इस महिमामयी संस्था के साथ जुड़ने को आतुर थे; किन्तु न्यास की सदस्यता सीमित होने के कारण अपनी इच्छा-पूर्ति न कर सकने को विवश थे। अतः बाद में गुरुदेव ने 'द डिवाइन लाइफ़ सोसायटी' की स्थापना की जो १६ अप्रैल १९३९ को लाहोर में पंजीकृत हुई।

पूर्व-कथित सर्वप्रथम तीन शिष्यों के अतिरिक्त अन्य शिष्य भी थे जो गुरुदेव के मिशन के प्रति पूर्णतया समर्पित थे, यथा — स्वामी





विशुद्धानन्द जी, स्वामी निजबोधानन्द जी, स्वामी नारायणानन्द जी, स्वामी पूर्णबोधेन्द्रानन्द जी तथा अन्य भी बहुत से शिष्य थे। वे सभी आध्यात्मिक क्षेत्र में अति उच्चावस्था में थे। गुरुदेव के प्रति तथा गुरुदेव के मिशन के प्रति उनका प्रेम एवं श्रद्धा अत्यधिक थी, तथा गुरुदेव भी उनके प्रति उतना ही प्रेम एवं कृतज्ञता का भाव रखते थे। उन्होंने हर प्रकार से, यहाँ तक कि कड़े शारीरिक श्रमपूर्वक भी दिन-रात कठोर परिश्रम किया। १९४० और १९५० के दशकों में इन महान् गुरु के सान्निध्य में आने और प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले ये सभी शिष्य २० वीं शताब्दी के द्वितीय अर्धभाग तक निरन्तर भारतवर्ष एवं शेष विश्व-भर में गुरुदेव के मिशन और उनकी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार करने में निष्ठापूर्वक संलग्न रहे।

संस्था का निरन्तर विकास

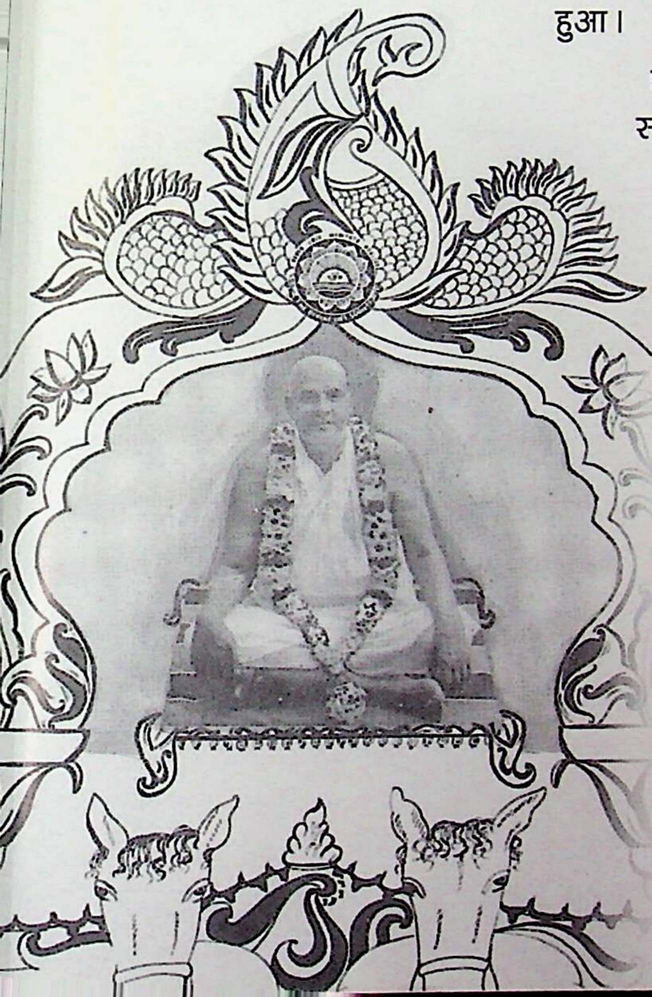
१४ जुलाई १९६३ में गुरुदेव की महासमाधि के उपरान्त उनके प्रमुख

शिष्य श्री स्वामी चिदानन्द जी आगामी ४५ वर्ष तक दिव्य जीवन संघ के अध्यक्ष पद पर रहे। दिव्य जीवन सन्देश के प्रचार के लिए उन्होंने भारतवर्ष तथा समस्त विश्व-भर में अथक यात्राएँ कीं। उन्होंने अनेकों नयी शाखाएँ प्रारम्भ करने की प्रेरणा दी, जिसके परिणाम-स्वरूप सदस्यों की संख्या में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई। स्वामी माधवानन्द जी ने प्रथम कोषाध्यक्ष के पद पर सेवा की तथा १९७५ में वह उपाध्यक्ष पद के लिए चयनित हुए। श्री स्वामी कृष्णानन्द जी, जो ३८ वर्ष की दीर्घकालावधि तक महासचिव पद पर आसीन रहे, एक महान् गुरु थे, जिनके बहुत बड़ी संख्या में शिष्य एवं अनुयायी थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने वेदान्त का सर्वोच्च ज्ञान दिया। स्वामी विद्यानन्द जी ने योग को संगीत एवं भक्ति के रूप में प्रोत्साहन दिया। स्वामी देवानन्द जी ने आन्ध्र प्रदेश में आध्यात्मिक लहर प्रवाहित की तथा स्वामी प्रेमानन्द जी ने वही महान् कार्य पंजाब में किया। स्वामी सत्यानन्द जी ने गुरुदेव के कार्य को सतत आगे बढ़ाते हुए अनेकों शिष्यों एवं अनुयायियों सहित एक अन्य विशाल आश्रम बिहार में स्थापित किया। स्वामी वेंकटेशानन्द जी ने बहुत-सी महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की तथा गुरुदेव की शिक्षाओं का विश्व-भर में प्रचार करते हुए यात्राएँ कीं। स्वामी चिन्मयानन्द जी शास्त्रों का गहन अध्ययन करने के उपरान्त वेदान्त-दर्शन का प्रतिपादन करते हुए विश्व-भर में घूमे। स्वामी सहजानन्द जी डिवाइन लाइफ सोसायटी को दक्षिण अफरीका ले कर गये। स्वामी सच्चिदानन्द जी

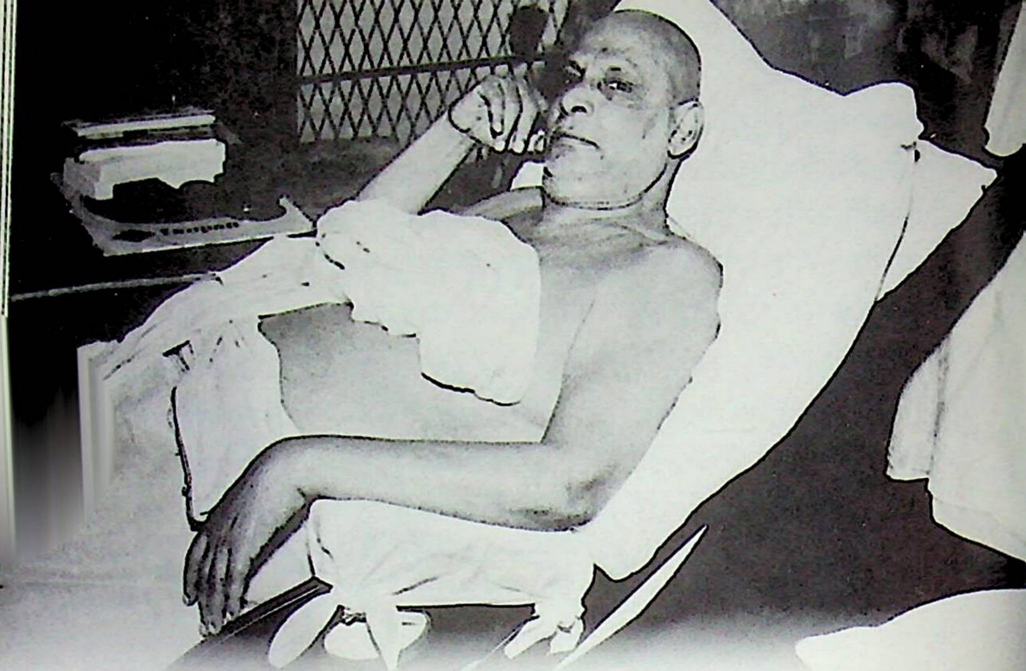


ने अमरीका में बहुत बड़े आश्रम की स्थापना की तथा स्वामी विष्णुदेवानन्द जी ने कैनेडा में विशाल आश्रम की स्थापना तथा विश्व-भर में एवं भारत में उसकी बहुत-सी शाखाएँ प्रारम्भ कीं। एक सामान्य एवं सरल उद्भव से डिवाइन लाइफ सोसायटी एक विश्व-विख्यात तथा अत्यन्त प्रतिष्ठित संस्था बन गयी।

८ सितम्बर १९८६ को गुरुदेव के जन्मशताब्दी महोत्सव मनाने के लिए पूरे वर्ष-भर को ही जन्मशताब्दी वर्ष के रूप में मनाने की उद्घोषणा की गयी। इसी समय में श्री स्वामी चिदानन्द जी की दिव्य प्रेरणा से गुरुदेव के जन्म-स्थान पत्तमडै में एक धर्मार्थ चिकित्सालय का निर्माण किया गया। इसका उद्घाटन २५ दिसम्बर १९८७ को हुआ।



इसके तीन वर्ष पश्चात् स्वामी चिदानन्द जी ने २१ वीं शताब्दी के आगमन के आध्यात्मिक उपक्रम के रूप में १९९० से १९९९ तक के दशक का 'दिव्य दशक' के रूप में शुभारम्भ किया, नूतन सहस्राब्दी के शुभारम्भ के उपलक्ष्य में दो विश्व सम्मेलन आयोजित किये गये—प्रथम ३० दिसम्बर १९९९ से २ जनवरी २००० तक मुम्बई (महाराष्ट्र)



में; तथा द्वितीय इसके ठीक दो वर्ष पश्चात् कटक (उड़ीसा) में। विश्व-भर से सहस्रों की संख्या में दिव्य जीवन संघ के सदस्य प्रथम बार इन दोनों सम्मेलनों में एक स्थान पर एकत्रित हुए।

२८ अगस्त २००८ को परमाध्यक्ष श्री स्वामी चिदानन्द जी की महासमाधि के उपरान्त, उस समय के महासचिव श्री स्वामी विमलानन्द जी, जो कि गुरुदेव के सबसे पुराने शिष्यों में से थे, सोसायटी के परमाध्यक्ष बने। वह १० वर्ष तक गुरुदेव की सेवा में तथा ५५ वर्ष तक स्वामी चिदानन्द जी की सेवा में रहे थे। उनके परमाध्यक्ष बनने पर स्वामी पद्मनाभानन्द जी नये महासचिव बने। उनकी सुविचारित देख-रेख एवं दक्ष संचालन में आश्रम तथा सोसायटी निरन्तर विकासोन्मुखी हो कर प्रगति पथ पर अग्रसर तथा विस्तृत हो रही है, साथ ही गुरुदेव के समय की उसी भावना से सच्चाई के साथ अपने कार्य में संलग्न है।

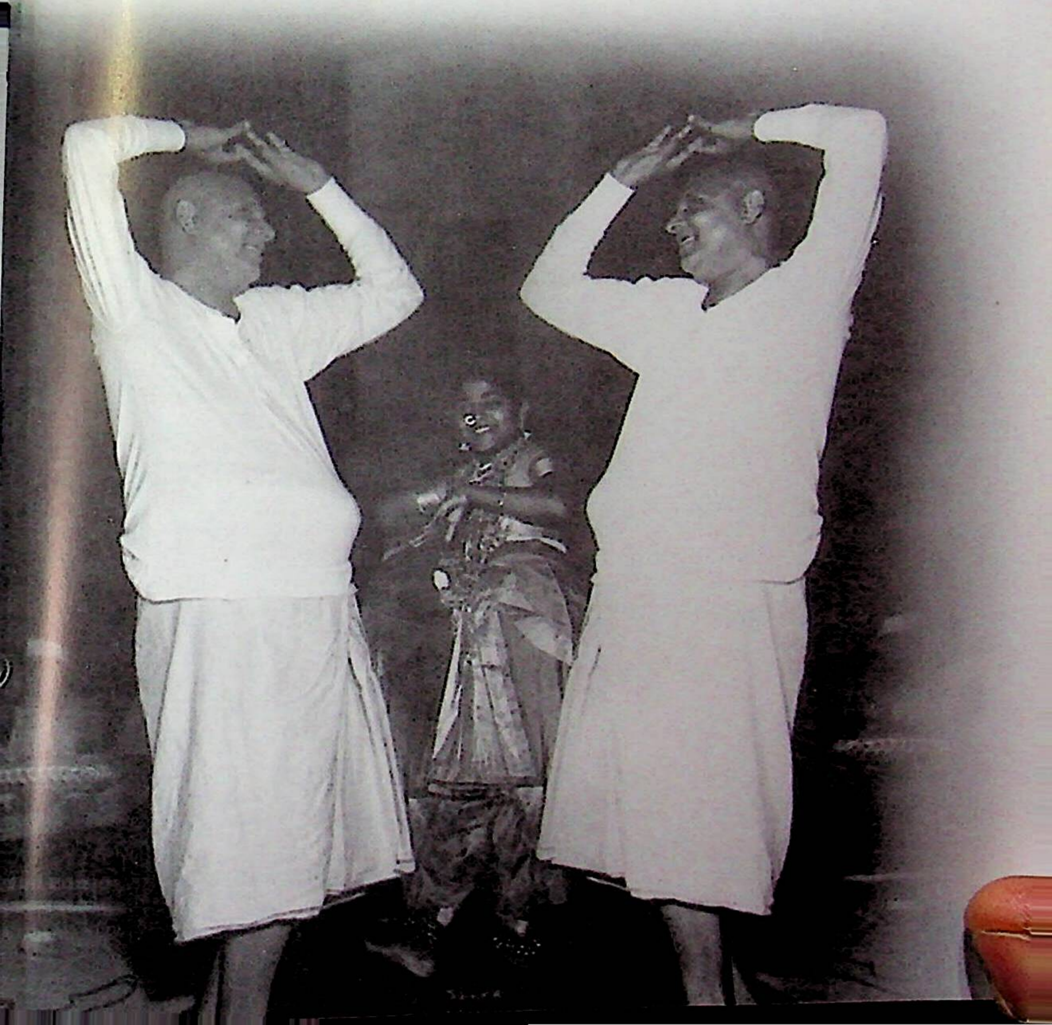
आध्यात्मिक और सांस्कृतिक ज्ञान के प्रसार के लिए तथा विशेष रूप से देश के युवा वर्ग को प्रारम्भिक निर्माण-काल के वर्षों में लाभान्वित करने के लिए द डिवाइन लाइफ सोसायटी ने पीठ-स्थापना, स्थाई-निधि, अध्ययन केन्द्र तथा छात्रवृत्ति स्थापना इत्यादि के कार्यक्रम प्रारम्भ करने के लिए बहुत से विश्वविद्यालयों से सम्पर्क स्थापित किया है। इस प्रकार

स्थापना हुई—

(१) 'युनिवर्सिटी ऑफ़ मद्रास' (मद्रास विश्वविद्यालय) में 'स्वामी शिवानन्द मैमोरियल लैक्चरज़' (स्वामी शिवानन्द स्मृति प्रवचन) के लिए स्थाई-निधि की स्थापना।

(२) 'एम. एस. युनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा गुजरात' (वडोदरा विश्वविद्यालय) के 'आर्ट्स विभाग' में 'द स्वामी शिवानन्द स्टडी सैन्टर ऑफ द स्पिरिचुअल एण्ड कल्चरल हैरिटेज ऑफ इंडिया' की स्थापना।

(३) उड़ीसा के विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों के पाँच स्नातकोत्तर



विद्यार्थियों के लिए (स्वामी शिवानन्द स्मृति छात्रवृत्ति कार्यक्रम) 'द स्वामी शिवानन्द मैमोरियल स्कालरशिप कार्यक्रम' की स्थापना।

यह बात प्रत्येक व्यक्ति भली-भाँति और स्पष्टतया जानता है कि गुरुदेव अभी भी सारी देख-रेख कर रहे हैं और सब-कुछ वही, केवल वही करवा रहे हैं। उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये, स्वयं उन्हीं के शब्दों में—"सेवा, भक्ति, दान, पवित्रता, ध्यान और साक्षात्कार" के महान् कार्यों के पीछे स्वामी शिवानन्द जी की प्रेरणाप्रद दिव्य उपस्थिति निरन्तर निर्देशित कर रही है।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी के प्रमुख विभाग तथा प्रारम्भ किये गये कार्य

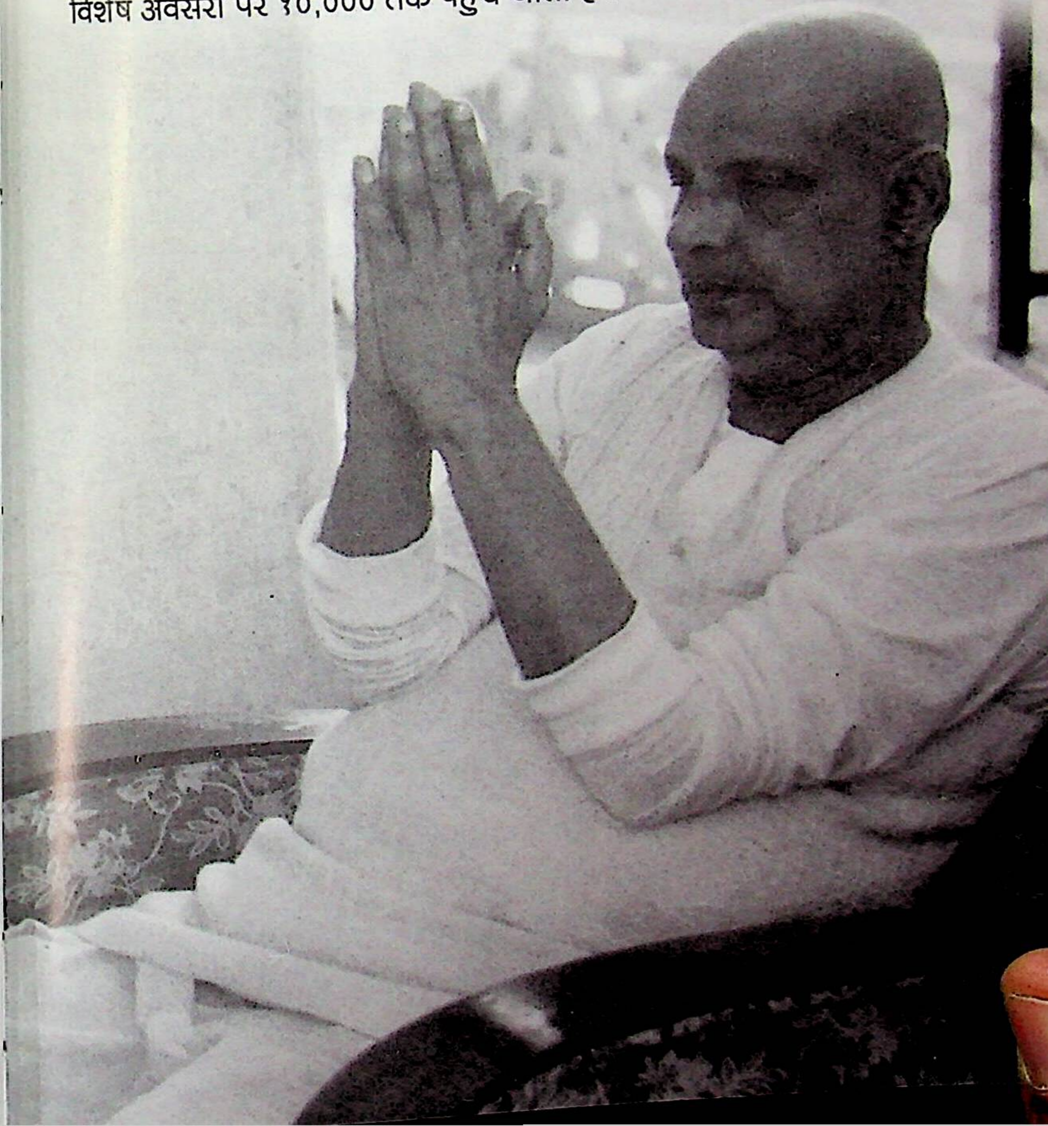
योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी — एकाडेमी प्रत्येक वर्ष तीन द्विमासीय-कोर्स आयोजित करती है। यह कोर्स व्यक्तिगत विकास के लिए तथा मानव-कल्याण के लिए आवश्यक अनुशासन के प्रति जागरूक करने; जिज्ञासु साधकों को भारतीय संस्कृति के मूलभूत प्रारम्भिक ज्ञान से अवगत कराने तथा योग के व्यावहारिक पक्ष में प्रशिक्षित करने के उद्देश्य को ले कर किये जाते हैं।

योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस—इस विभाग द्वारा स्वामी शिवानन्द जी द्वारा तथा अन्य विद्वान् संन्यासियों द्वारा लिखी गयी पुस्तकों के अतिरिक्त संस्था का साहित्य, पत्रिकाओं तथा दो मासिक पत्रिकाओं—अँगरेजी में 'द डिवाइन लाइफ' तथा हिन्दी में 'दिव्य जीवन' का प्रकाशन किया जाता है। इन दोनों मासिक पत्रिकाओं में दर्शन एवं धर्म सम्बन्धी लेख होते हैं तथा ये संस्था के समस्त सदस्यों को निर्देशन देती हैं और सूचनाओं और गतिविधियों इत्यादि से अवगत करवा कर संस्था के साथ जोड़ती हैं।

द शिवानन्द पब्लिकेशन लीग बुक स्टोरज़—ऐसे लाभ-निरपेक्ष, निकास-स्थल हैं जहाँ जन-साधारण के लिए बहुमूल्य साहित्य सहज-सुलभ उपलब्ध करवाया जाता है। **निःशुल्क वितरणार्थ साहित्य विभाग**—समस्त विश्व के जिज्ञासु साधकों के लिए नियमित रूप से ज्ञान-प्रसाद के रूप में अत्युत्तम साहित्य उपलब्ध करवाता रहता है।

धर्मार्थ चिकित्सालय—आश्रम चिकित्सालय जन-साधारण को निरन्तर निःशुल्क चिकित्सीय सहायता देता तथा समय-समय पर चिकित्सीय शिविर, जैसे निःशुल्क नेत्र शिविर इत्यादि आयोजित करता है।

अन्नपूर्णा अन्नक्षेत्र—आश्रम के सार्वजनिक निःशुल्क भोजनालय में आश्रम के २०० के लगभग स्थाई अन्तेवासियों तथा आने वाले साधकों, अतिथियों और यात्रियों के लिए प्रतिदिन भोजन बनता है। इनकी कुल संख्या सामान्य दिनों में ५००, विशेष अवसरों पर १००० तथा अत्यन्त विशेष अवसरों पर १०,००० तक पहुँच जाती है।



मन्दिर—आश्रम में देश-विदेश से अनेक पुराने एवं नये भक्त, साधक, दर्शनार्थी एवं अतिथि साधना और निर्देशन प्राप्त करने के लिए आते हैं। आश्रम सभी का हार्दिक स्वागत करता है। नित्य यथासमय अभिषेक, आरती, पूजा, प्रार्थना तथा विश्व-शान्ति एवं मानव-कल्याण हेतु प्रार्थना इत्यादि **समाधि मन्दिर** तथा **श्री विश्वनाथ मन्दिर** में नियमित रूप से की जाती है। **भजन हाल** में मानव-कल्याण एवं विश्व-शान्ति के लिए दिसम्बर १९४३ से निरन्तर २४ घण्टे अखण्ड महामन्त्र जप चल रहा है। समाधि मन्दिर में नित्य प्रातःकाल में ब्राह्ममुहूर्त ध्यान-सत्र तथा सायंकालीन सत्संग अनेकों साधकों के लिए सूक्ष्म दृष्टि, प्रेरणा तथा शान्ति प्राप्त करने का साधन हैं। गुरुपूर्णिमा के उपरान्त होने वाले साधना-सप्ताह तथा सप्ताह-पर्यन्त चलने वाली क्रिसमस रिट्रीट (शिविर) दोनों ही बहुत से साधक जिज्ञासुओं को नव-जीवन प्रदान करने वाले आकर्षक वार्षिक कार्यक्रम हैं।

पुस्तकालय—इसमें परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज तथा गुरुदेव के घनिष्ठ शिष्य स्वामी चिदानन्द जी, स्वामी कृष्णानन्द जी, स्वामी वेंकटेशानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी इत्यादि सभी की रचनाएँ संग्रहीत हैं। यहाँ दर्शन-शास्त्र, योग, संस्कृति और साहित्य सम्बन्धी, अँगरेजी, हिन्दी, संस्कृत, सभी प्रान्तीय भाषाओं तथा पश्चिमी भाषाओं में बहुमूल्य साहित्य उपलब्ध है।

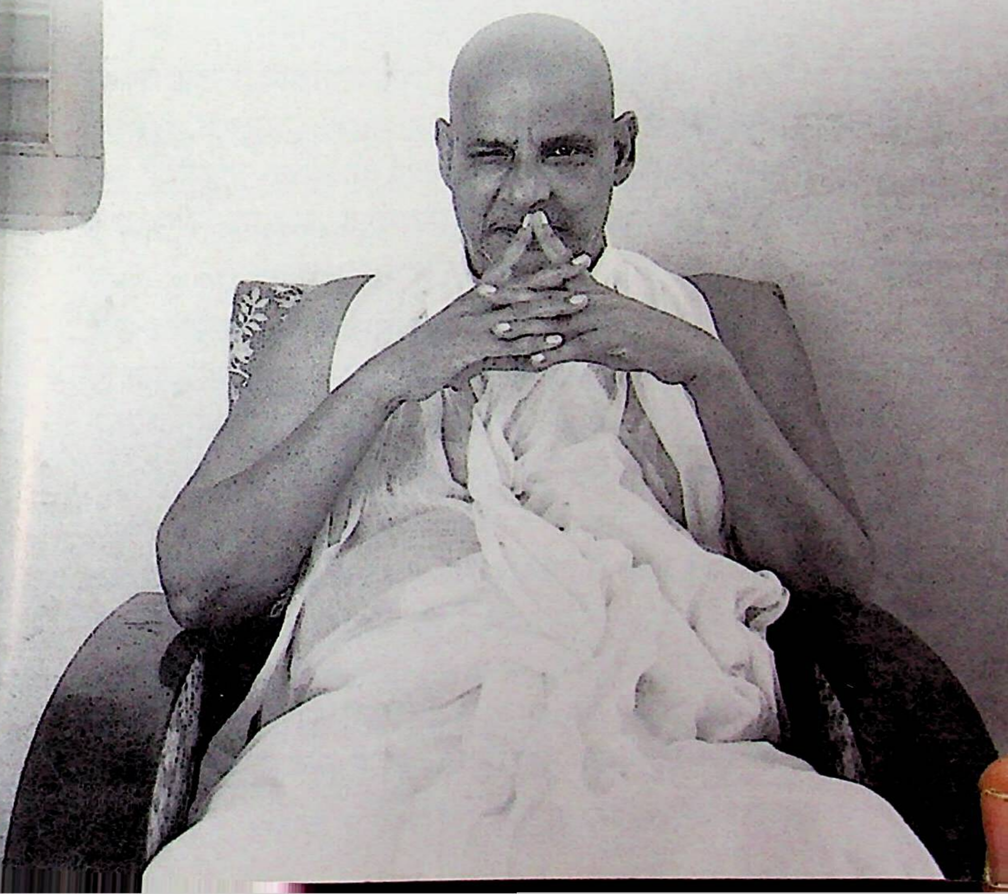
ऑडियो-विजुअल लाइब्रेरी (श्रवण-दर्शनालय)—यह विभाग २००३ में प्रारम्भ हुआ। टीवी मॉनीटर, टेपडेक तथा हेडफोन सभी को उपलब्ध कराये जाते हैं, जिनकी सहायता से श्रोता एवं दर्शक विस्तृत रूप में संग्रहीत आश्रम द्वारा ही बनायी गयी सीडी, डीवीडी इत्यादि तथा अन्य सन्तों एवं उपदेशकों की संग्रहीत दृश्य-श्रव्य रिकार्डिंग एवं वाद्य संगीत और गायन की अनेक कैसेट और सीडी इत्यादि का आनन्द ले सकते हैं।

ऑडियो-वीडियो स्टुडियो (श्रव्य-दृश्य शिल्पशाला)—इस विभाग का उद्घाटन २००४ की रामनवमी के शुभ अवसर पर हुआ था। प्राचीन, दुर्लभ तथा आजकल अप्राप्य ऑडियो-वीडियो रिकार्डिंग के संरक्षण के लिए तथा उन्हें भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख कर सीडी एवं डीवीडी में उपलब्ध कराने के लिए इसे आरम्भ किया गया है।

चित्र परिरक्षण केन्द्र में स्वामी शिवानन्द जी तथा अन्य सभी वरिष्ठ स्वामी जी के दुर्लभ चित्रों का संरक्षण एवं जीर्णोद्धार तथा पुनरुत्पादन किया जाता है।

स्वामी शिवानन्द पुरालेखागार (ऑकाइव्ज़)—इस अनमोल निधि का उद्घाटन (स्कन्द-षष्ठी के शुभ दिन) २४ अक्तूबर २००१ को हुआ था। यहाँ गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी की सम्पूर्ण कृतियाँ (लगभग ६000,000 पृष्ठ) तथा सहस्रों ऐसे चित्र हैं, जिन्हें स्कैन (क्रमवीक्षण) और डिजिटाइज़ करके परिरक्षित किया गया है तथा भविष्य के लिए इलेक्ट्रोनिक (विद्यदणु) ढंग से संग्रहीत किया गया है।

वैबसाइट—१९९९ में द डिवाइन लाइफ सोसायटी ने विद्युदणु-युग (इलेक्ट्रोनिक एज) में तथा वैब प्रैसेंस में पदार्पण किया। आश्रम की अपनी तीन वैबसाइट हैं— www.sivanandaonline.org www.dlshq.org





www.chidananda.org तथा यह तीनों वैब साइट सोसायटी तथा इसकी गतिविधियों के सम्बन्ध में आधुनिकतम सूचना तत्काल उपलब्ध करा देती हैं। गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी के ज्ञानोपदेशों को तुरन्त जानने के लिए यह 'ऑन लाइन प्लैटफ़ाम' है, साथ ही 'क्रैडिट कार्ड' के द्वारा पुस्तक क्रय भी उपलब्ध है।

संगीत कक्ष—इस भवन का २००४ में पूर्णतया नवीनीकरण किया गया था। इसमें संगीत एवं गायन का प्रशिक्षण और अभ्यास किया जाता है, जो कि गुरुदेव को विशेष रूप से प्रिय थे। यह आश्रम के अन्तेवासियों, अतिथियों तथा जो भी संगीत-गायन में रुचि रखता हो, उन सबके लिए उपलब्ध है।

शिवानन्द सत्संग भवन—एक विशाल सभाभवन/अतिथि निवासस्थान बनाने के विचार को सर्वप्रथम परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी ने स्वीकृति दी तथा उसके उपरान्त उन्होंने ही २००६ की गुरुपूर्णिमा के पावन अवसर पर इसका उद्घाटन किया। अब इस भवन के रूप में गुरुपूर्णिमा, साधना-सप्ताह, नवरात्रि तथा अन्य सभी मुख्य कार्यक्रमों में आने वाले साधकों के

विशाल समूह के लिए एक स्थाई-स्थान बन गया है। छोटे कार्यक्रम अथवा शिविर—जैसे क्रिसमस इत्यादि अभी छोटे भवनों में ही आयोजित किये जाते हैं। इस भवन में ४८ अतिथि-कक्ष हैं और बहुत से शयनागार (विशाल कमरे) हैं। इस प्रकार यह एक अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि इसके बनने से पहले जो सीमित आवास सुविधा के कारण आश्रम से बाहर भी लोगों को ठहराना पड़ता था, उससे अब काफी हद तक राहत मिल गयी है।

पत्र-व्यवहार विभाग—यह विभाग आश्रम में आने वाले सभी पत्रों को देखता है तथा विश्व-भर से साधकों द्वारा पूछे जाने वाले असंख्य प्रश्नों का उत्तर देता है।

सांस्कृतिक यात्राएँ—आश्रम के वरिष्ठ संन्यासियों द्वारा की जाने वाली ये सांस्कृतिक यात्राएँ भारत तथा विदेशों के सभी साधकों एवं भक्तों के लिए अत्यन्त लाभप्रद हैं। स्वामीजिओं द्वारा दिये जाने वाले उपदेशों, प्रवचनों तथा व्यक्तिगत निर्देशनों द्वारा वे सब अत्यन्त लाभान्वित होते हैं। और इसी उद्देश्य को ले कर ये सब महात्मा यात्राएँ करते हैं।

दिव्य जीवन सम्मेलन—भारत में, नियमित रूप से भिन्न-भिन्न स्थानों पर, शाखा-स्तर पर तथा प्रान्तीय-स्तर पर होने वाले ये सम्मेलन, सोसायटी के व्यापक रूप से फैले हुए साधकों को प्रेरित करने के लिए, उनमें परस्पर प्रेम विकसित करने के लिए तथा उनकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए अत्यन्त प्रभावशाली साधन बन गये हैं।

योग-कक्षाएँ—मुख्यालय आश्रम से बाहर, अन्य संस्थाओं में प्रायः समय-समय पर चलायी जाने वाली ये कक्षाएँ भी सामान्यतया समस्त समाज को तथा विशेषतया साधकों एवं विद्यार्थियों को प्रेरित करने का प्रमुख साधन हैं। आश्रम के योग-कक्ष में हठयोग की कक्षाएँ प्रातः पुरुष-वर्ग के लिए तथा सायंकाल में महिला-वर्ग के लिए संचालित की जाती हैं।

व्यक्तिगत मार्गदर्शन—गुरुदेव अपने शिष्यों का आध्यात्मिक पथ पर निरन्तर पितृवत् मार्गदर्शन करते रहे। उसी परम्परा को चलाते हुए मुख्यालय आश्रम के वरिष्ठ सन्त अपनी समस्याओं एवं शंकाओं को ले कर आने वाले साधकों का व्यक्तिगत रूप से मार्गदर्शन करते हैं। सच्चे साधकों के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और वे सभी इससे अत्यन्त लाभान्वित

हुआ अनुभव करते हैं।

शैक्षिक सहायता—स्थानीय तथा पर्वतीय क्षेत्रों के अभाव-ग्रस्त बच्चों के लिए प्रारम्भिक कक्षा से स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा के लिए शैक्षिक सहायता दी जाती है। यह अत्यावश्यक एवं महत्त्वपूर्ण सहायता-योजना हुत वर्ष पहले प्रारम्भ की गयी थी। २०१० में २६०० से अधिक बच्चे इस ोजना से लाभान्वित हो कर स्वर्णिम भविष्य के पथ पर अग्रसर हुए।

कुष्ठ सहायता-कार्य—गुरुदेव के समय से प्रारम्भ किये गये तथा स्वामी चिदानन्द जी द्वारा पूर्णता तक पहुँचाये गये इस सहायता-कार्य का ही परिणाम है कि आज पूरे क्षेत्र में एक भी कुष्ठ-पीड़ित भिक्षा-वृत्ति करता दिखायी नहीं देता। अब १०० से लगभग कुष्ठरोगी ब्रह्मपुरी, लक्ष्मणझूला तथा ढालवाला की बस्तियों में सुन्दर जीवन जी रहे हैं।

शिवानन्द होम—यह अन्य ७० ऐसे रोगियों की पूर्ण देख-रेख करता है जो संक्रामक रोगों से अथवा दीर्घकालीन रोगों से ग्रसित हैं, जो लाचार हैं, निराश्रय हैं, आवास विहीन हैं अथवा परित्यक्त एवं एकाकी हैं, उनको आवश्यकतानुसार कुछ समय के लिए अथवा सदा के लिए यहाँ रहने की सुविधा दी जाती है।

समाज-सेवा विभाग—इस विभाग का उद्देश्य पीड़ित एवं अभाव-ग्रस्त लोगों को दान के द्वारा यथासम्भव सहायता दे कर कष्ट-मुक्त करने का प्रयास करना है। यह निर्धन और जरूरतमन्द लोगों को चिकित्सीय सहायता उपलब्ध कराने के अतिरिक्त देश में विभिन्न सहायता-कार्य करता और अन्य चल रहे सहायता-कार्यों में सहयोग भी देता है।

गोशाला—यहाँ ३० से अधिक गायें हैं जिनके दूध का अन्न-क्षेत्र, चिकित्सालय तथा आश्रम-मन्दिरों में उपयोग किया जाता है।

आश्रम की ये सभी सेवाएँ और गतिविधियाँ गुरुदेव के—'सेवा, प्रेम, दान' के शब्दों की भावनाओं का व्यावहारिक रूप में प्रकटीकरण हैं। यह सेवा, प्रेम और दान ही हैं जिनके द्वारा 'पवित्रता, ध्यान और साक्षात्कार' की प्राप्ति होती है और इस प्रकार गुरुदेव के दिव्य जीवन के लक्ष्य की परिपूर्णता की प्राप्ति की जा सकती है।

उनके द्वारा हमें दिये गये दिव्य जीवन जीने के आह्वान के प्रति हम सदैव अनुग्रहीत रहें ! उनकी कृपा हमें इस योग्य बनाये कि हम उनकी शिक्षाओं पर सच्चाई से चल सकें! जय गुरुदेव! हरि ॐ तत् सत्!

"कोई भी व्यक्ति, जिसकी सत्य, अहिंसा तथा शुचिता के आदर्श में निष्ठा है, इस संस्था का सदस्य बन सकता है । द डिवाइन लाइफ सोसायटी एक सम्प्रदाय-निरपेक्ष संस्था है जिसके विशाल दृष्टिक्षेत्र में सभी धर्मों के और सामान्य रूप से आध्यात्मिक जीवन के सर्वमान्य मौलिक सिद्धान्त समाहित हैं। यह संस्था सभी वादों और धार्मिक रूढ़ियों को समान रूप से सम्मान प्रदान करती है। संस्था के सिद्धान्तों, दार्शनिक मान्यताओं तथा उपदेशों में सभी मतों और सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का समावेश होने से इसके सदस्य, पारम्परिक पृष्ठभूमि तथा धार्मिक प्रथाएँ पृथक्-पृथक् होते हुए भी इनके आधार पर न तो मतभेद को मान्यता देते हैं और न विघटनकारी मनोवृत्तियों को ही प्रश्रय देते हैं। स्वामी शिवानन्द जी के उपदेश हैं कि प्रत्येक प्राणी में दिव्य चेतना की सम्भावनाएँ हैं तथा भले बन कर और भला करके अपनी बाह्य और अन्तः प्रकृति पर नियन्त्रण-स्थापन द्वारा इस अन्तर्स्थित भागवतीय चेतना के प्रकटीकरण का प्रयास करना ही प्रत्येक व्यक्ति का जीवन लक्ष्य है। उपर्युक्त आदर्श-सम्पन्न कोई भी डिवाइन लाइफ सोसायटी का सहर्ष सदस्य बन सकता है।"

